किशोरावस्था

नवयुवकोपयोगी कुछ पुस्तकें

हृदय-तरंग	।)	कर्म-योग	॥), १)
भूकंप	१), १॥)	विदेशी विनिमय	१), १॥)
केशव चंद्रसेन	१), १॥)	प्राचीनपंडितऔरकवि।॥=)१।=)	
देव और विहारी	१॥), २)	प्राणायाम	॥=), १।=)
बंकिमचंद्र चटर्जी	१), १॥)	साहित्य-सुमन	॥=), १=)
इँगलैंड का इतिहास	४)	तात्कालिक चिकित्सा १), १।॥)	
भिखारी से भगवान्	१), १॥)	नाट्यकथाऽमृत	१॥), २)
द्विजेंद्रलाल राय	≡)	भारत में बाइबिल	१॥)
हठयोग	२)	कार्नेगी और उसके विचार ॥=)	
सुकवि-संकीर्तन	१), १।॥)	जीवन-मरण-रहस्य	।=)
मनोविज्ञान	॥), १)	नीति-रत्न-माला	।)
विश्व-साहित्य	१॥), २)	प्रभु-चरित्र	॥), १)
एशिया में प्रभात	॥), १)	मानस-मुक्तावली	॥=)
अद्भुत आलाप	१), १॥)	योग की कुछ विभूतियाँ॥), १)	
संक्षिप्त शरीर-विज्ञान ॥=), १=)		योगत्रयी	॥), १)
भवभूति	॥=), १=)	योगशास्त्रांतर्गत धर्म	॥)
हिंदी	॥=), १=)	राजयोग अर्थात् मान-	
संक्षिप्त स्वास्थ्य-रक्षा ॥=), १=)		सिकविकास	१॥), २)
भारतीय अर्थ-शास्त्र २॥), ३॥)		सम्राट् चंद्रगुप्त	१), १=)
तीस दिन में हिंदी	॥), १)	सुख तथा सफलता	।)
जीवन का सद्व्यय	१) १॥)	स्कॉट-मार्शिंग	॥=), ॥)
निबंध-निचय	१), १।॥)	स्वास्थ्य की कुंजी	१), १।॥)

गंगा-पुस्तकमाला का दूसरा पुष्प

किशोरावस्था

लेखक

गोपालनारायण सेन सिंह बी० ए०

"नवे वयसि यः शांतः स शांत इति कथ्यते ;
धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते ।"

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

[संशोधित तथा संवर्द्धित द्वितीय संस्करण]

सजिल्द १॥)] सं० १९८२ वि० [सादी ॥=)

INTRODUCTION

We often wonder why our boys do not grow now as hardy and strong as before; instead of grit and pluck we meet in them a softness and passivity which may as well be mistaken for a sign of culture and refinement, but in those who have seen manlier types, arouse grave suspicion of something very wrong in the mode of their bringing up. True, this has not remained unobserved by many who have seen in this gradual deterioration of the physique of our youths very bad omens for the country; but these forebodings have, somehow, been followed by no constructive work.

May be, the busy journalists or platform speakers have no time to see that the pollution of the race begins at the very fountain-head of adolescent life. It is their growth at this early stage which is interfered with and gives rise to all the irregularities in later life. And

for this there are two tendenci[...]
held responsible.

Firstly, properly equipped [...]
Boarding Houses, for all stud[...]
schools or colleges, where young [...]
placed under the same beneficie[...]
as surround them at home, are stil[...]
from realised. Thus, at such plac[...]
not effectively exercise those chec[...]
traints which parents and elders onl[...]
to exercise, softening their stern[...]
gentleness and their rebukes with [...]
affection.

Secondly, to a great extent, the eld[...]
bers of the family also seem to have [...]
nterest in the young than they had so[...]
go. The calls of business or of soci[...]
ublic life are so great that questions af[...]
e immediate domestic life, however vit[...]
licate their issues, have to stand over.

No wonder that our boys are turned [...]
in the world without any fixed principl[...]
polished manners that distinguished them [...]
fore. This defect, shown in later life, g[...]
by the name of vulgarism or betrayed [...]

open defiant manner, called "rowdysm," so trying to the temper of leaders. But we must remember that this is only the surface of the evil; its deeper springs lie in the disipated inner life and wrecked physical constitution which are the direct consequences of early neglect or lack of discipline. We should not be shocked at it, because from the amount of care we bestow on the young no better result can be expected.

An enfeebled body, chequered educational career, absence of any ambition to attempt great things for the honour of the country, what hopes can be built on such poor shadowy beings!

We may be all eager to bring help to these forlorn youths, but it will be only in the nature of a palliative. Speaking as a medical man, I may confess that over the whole range of my practice in this part of the country, I find that the youths seldom seek my advice before it is too late to give them anything but a little hope and consolation.

The truth is that the proper season to earn their right to vigorous and happy life and successful career is when they are still boys.

They ought to acquire from their elders at this time an acquaintance with the primary laws of health and by strict obedience to them develop clean, wholesome habits and an open reverent attitude towards all moral questions. What a pity that such instructions should, till recently, be kept secret, leaving the boy to pick up for themselves scraps of doubtful information on the vital points right living and right thinking. What injury this reserve on the parts of parents and teachers has caused, can be realised only by those who have seen the enormous wastage of energy and capacity in the young of the present generation.

It is with a genuine feeling of relief and satisfaction, therefore, that I come across in the following pages an able attempt to take the young in confidence and explain to them the dangers and pitfalls of early youth, with plentiful suggestions for a safe guidance to a pure, dignified and useful life, worthy of the great Indian nation.

The author has, clearly succeeded indicating, with insight and sympathy, methods not only for living a clean and healthful life but also in providing adequate religious and moral

motives for the self-deliverance of the youth. His exposition of the physiological laws affecting maturity and youth is at once fascinating and popular, and will undoubtedly have a grip on the understanding of the young reader as it is no less scientific and accurate than simple and direct in its appeal. I am confident the most despairing will derive benefit from these pages and be able to face the world once more with courage.

I commend the book heartily also to parents and teachers interested in the well-being of the young and trust it will lay bare before them all the weak sports which require their attention

Lastly, as it is the first publication in the vernacular in which technical description has been combined with sound moral advice, I wish the book may reach as large a number of readers as the present needs of Indian society demand.

ALLAHABAD : } DESH RAJ RANJIT SINGH, LT. L. M. S.,
12th Oct., 1917. } *Medical Officer Allahabad University Hostels.*

स्वीकृति

इस पुस्तक का कुछ अंश लेखक ने प्रयाग के प्रसिद्ध मासिक पत्र "विज्ञान" में निबंध-रूप छपवाया था, जिसे यहाँ उद्धृत करने की विज्ञान-परिषद् ने अनुमति दे दी है। अतएव हम उसके कृतज्ञ हैं। "मूत्राशय"-शीर्षक ब्लॉक हमें डॉ० त्रिलोकीनाथ वर्मा से प्राप्त हुआ है. इसलिये वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। प्रूफ़-संशोधन हमें एक मित्र से सहायता मिली है। हम उनके भी ऋणी हैं

जिन पुस्तकों के अध्ययन और अवलोकन से लेख को सहायता मिली है, उनकी सूची नीचे दी जाती है—

Evolution of sex	... P. Geddes
Youth & sex	... Scharlieb
From youth into manhood	... Winfield Hal
Emile	... Rousseau
Problems of Boy Life	... Whitehouse
Youth : its education	... S. Hall
Children	... *Darroch*
Children of the nation	... John Gorst
ब्रह्मचर्य	... स्वामी निगमानंद
सुखमार्ग	... महेंद्रुलाल गर्ग
Articles in Atheneum	... 1917

लेखक

विषय-सूची

किशोरावस्था

देश की दशा बड़े वेग से बदल रही है, लोगों के विचारों में बात-बात में अंतर पड़ रहा है। जहाँ कुछ दिन पहले लोग अपनी संतान को बनैले पशुओं के भय, ठगों की धूर्तता और डाइनों की कुदृष्टि से बचाने के लिये यत्न किया करते थे, वहाँ अब के माता-पिता अपने बाल-बच्चों को गंदे और दूषित विचारों से बचाने को उद्यत रहते हैं।

इसी कारण आजकल सभी समझदार माता-पिता—चाहे स्वयं उनमें कैसा ही व्यसन हो, चाहे वे कैसी ही संगति में उठते-बैठते हों—इस बात का अवश्य ध्यान रखते हैं कि उनका बच्चा कोई बुरी लत न पकड़ने पावे, कहीं वह भटककर कुमार्गगामी न हो जाय। साधारण मनुष्य अपनी समझ-

भर लड़कों को जुआड़ी, चोर, लुच्चे-लफंगों से
हैं। वे उन्हें होली और थिएटर, फड़ और तिन
माया में आने से बचाते हैं। उनसे अधिक बुद्धि
वाले अपने बालक-बालिकाओं को बाज़ारू गीत
देखने और निकृष्ट दिल्लगी-मज़ाक करने से म

शिक्षित लोग जब स्कूल और कॉलेज की
चुनने बैठते हैं, तो इसका ध्यान रखते हैं
काव्य या साहित्य-ग्रंथ में कोई अश्लील पद
और जिन ऐतिहासिक पुस्तकों के पढ़े बिना का
सकता, उनके किसी अंश में भी यह दूषण हो,
हटा दिया जाय। यह उचित ही है। पर याद रहे,
उत्साह में हमारे गंभीर समाज-सुधारकों से स्व
भारी अनर्थ हो जाना संभव है। वह यह कि
असंगत के वाद-विवाद में सत्य का ही गला न
इसीलिये संसार के प्रसिद्ध और अजर-अमर
माथे, स्वतंत्र और वैज्ञानिक वर्णन के लिये, कलं
लगाना ठीक नहीं जँचता है। हमारे कवि-शिरोमणि
और मध्यकालीन कवि जयदेव इस संबंध में बहुत

सारी भाषा ही को बदनाम कर रक्खा है। उन्हें जैसे सादी, वैसे ही उमरख़य्याम और उनके छोटे भाई ज़ौक और दाग़ जँचते हैं। सभ्य पुरुषों के बीच और नाम न लीजिए; चिढ़ाने के लिये इतने ही बहुत हैं। परंतु ध्यान रहे, ऐसा करने में हमारा कोई लाभ नहीं; हम अपने लक्ष्य से बहुत दूर निकल जाते हैं।

प्रश्न यह है कि आपको कौन-सा ऐसा कवि मिलता है, जिसकी रचना में साधारणतः स्त्री-पुरुष के मनोगत भाव, इच्छा-वासनाओं का वर्णन तथा सांसारिक जीवन और व्यवहार का संकेत नहीं है ? सच तो यह है कि बहुत लोगों को बालकों के हाथ केवल कलुषित विचार-पूर्ण पुस्तकें देना ही अस्वीकार नहीं है, वरन् वे धर्म, पवित्रता और सुधार के नाम बालकों के स्वतंत्र रूप और जीवन के रहस्यों का पता पाने और उनके विषय में परिचय लाभ करने के विरुद्ध हैं। हम पूछते हैं कि क्या आप लड़कों को रामायण-सी उत्तम पुस्तक भी न पढ़ने देंगे ? भक्त-चूड़ामणि तुलसीदास के दोहे की व्याख्या क्या मनुष्य के स्वभाव को जाने विना ही कोई कर सकता है ? समझावे, देखें तो सही। किसी निर्दोष अल्प-वयस्क कुमार को कोई नीचे का पद्य कैसे समझावेगा—

"सुमिरि सीय नारद-बचन, उपजी प्रीत पुनीत ;
चकित बिलोकति सकल दिसि,जनु सिसु-मृगी सभीत ।"

इसमें 'प्रीत पुनीत' समझाना ज़रा कठिन काम है। गर्हणीय प्रेम क्या वस्तु है, इसकी व्याख्या कर लीजिए; फिर शुद्ध प्रेम की चर्चा चलाइएगा। पर इतने में तो सारा भंडा ही फूट जायगा—सारा भेद ही खुल जायगा। लड़के आप-ही-आप सड़क-बाजार में, बाग-बगीचों में चिड़ियों और पशुओं को देखकर जो अटकल लगावें, उससे क्या हुआ? उन्हें कोई परदे की बात नहीं बतानी चाहिए। उनको ढीठ बनाने से कोई लाभ नहीं। लड़के स्वभाव से ही लज्जाशील होते हैं। वे स्त्री-पुरुष की चर्चा से आप ही भागते हैं। उनके मन में पाप नहीं आ सकता। इसलिये ऐसी बातों से उन्हें कोई भय नहीं। इसी प्रकार जो मा-बाप स्वयं भोले बनते और अपनी मूर्खता के कारण अपने लड़कों को भी निरा भोला समझते हैं, उन्हें बहुत निराश होना पड़ता है।

नियम यह है कि किशोरावस्था आने के बहुत पूर्व से ही बालक-बालिकाएँ गुड्डे-गुड़ियों के खेलों में भी गर्भाधान इत्यादि की नक़ल उतारने लगते हैं, और जब कुछ और होश होता है, तो इस विषय में और अधिक जानने का उन्हें बड़ा कुतूहल उत्पन्न होता है। अनुभवी लोगों का कहना है कि अगर के

लड़कों की अपेक्षा देहात के लड़कों के लिये ये बिलकुल मामूली बातें होती हैं। वे पशुओं का ढंग भली भाँति जानते हैं। इसका कारण यह है कि वे नित्य देखा करते हैं कि गाय-भैंस के बच्चे, जन्म के पहले, मा के पेट ही में रहते और पुष्टि पाते हैं; पीछे जब वे पृथ्वी पर रहने के योग्य होते हैं, तब बाहर आते हैं। इन्हीं बातों को देखकर, नगर में, यदि कोई चतुर बालक अपने शिशु-भाई या बहन के संबंध में प्रश्न कर बैठता है, तो लोग 'चुप-चुप' करने लगते हैं।

डॉक्टर और वैज्ञानिकों का कहना है कि लड़के जब ऐसे प्रश्न करने लगें, तो जानना चाहिए कि अब उनसे सब बातें खोलकर स्पष्ट बता देने का समय आ गया। उनसे झूठ बोलने का अब कुछ काम नहीं। ये बातें किसी के छिपाए नहीं छिप सकतीं। उनके माता-पिता उन्हें न बतावेंगे, तो कोई दूसरा ही बता देगा। लड़के अपने ज्येष्ठ-संगियों के बीच किसी-न-किसी से सीख लेंगे। और, यह उनके हक़ में बहुत ही बुरा होगा।

इसका कारण यह है कि छोटी अवस्था में दुष्ट लड़कों को ही इन 'गुप्त' बातों का अधिक पता रहता है। जब वे दूसरे लड़कों के कान भरते हैं, तो अपनी ओर से उसमें बहुत कुछ नमक-मसाला भी लगा देते हैं। कभी-कभी तो वे जिन्हें अपना

चेला मूँड़ते हैं, उन्हें भ्रष्ट भी कर डालते हैं। अबोध लड़के
इसमें क्या दोष? उसे जो बताया जाता है, उसी को वह स
मानता और क्रियाओं का अभ्यास शुरू कर देता है
असमय अपनी इंद्रियों को उत्तेजित कर तथा स्त्री-पुरुष-संबंधी
बड़े ही दूषित और घृणित विचारों को मन में स्थान
देकर वह अपने को चौपट कर डालता है।

इस तरह न-जाने कितने ही बालकों ने अपने को आजन्म
रोगी बना डाला है, कितने ही युवकों ने अपनी आयु
क्षीण कर डाली है; कितने ही, जो इन बुराइयों का दृढ़ता-
पूर्वक सामना करके परिवार का पालन-पोषण करते, अना-
यास पाप के भँवर में पड़कर अपने कुल को कलंकित कर
गए हैं।

धन्य है वह शिक्षा-प्रणाली, जिसकी वेदी पर इतने लोगों
का शारीरिक बल और धर्म बलिदान हुआ! आश्चर्य तो
यह है कि सैकड़ों वर्षों से आज तक ज्यों-की-त्यों वही प्रणाली
चली आ रही है! एक विचित्र मोह और भ्रम में हम लोग
फँसे हुए हैं। पर अब यह भ्रम भी शीघ्र दूर हो चला। लोग
अब तक यही समझते आए थे कि लड़के स्वभावतः लजीले
होते हैं, और इस कारण वे पाप के पाश में नहीं फँसते।
र अब उन्हें थोड़ा-थोड़ा विश्वास होने लगा है कि लड़के

लाज-शर्म के कारण नहीं बिगड़ते, यह समझना बिलकुल मिथ्या है। वे जब तक बड़े-बूढ़ों के बीच में बैठते हैं, तभी तक इनमें यह लाज-शर्म होती है। अपने से बड़ों के सामने तो ऐसा मुँह बनाए रहते हैं, जैसे कुछ जानते ही नहीं। जरा किसी ने कहा—"भैया, घर में बहू को कब लाओगे ?" तो मारने दौड़ते हैं। कहिए—"यह अपनी बहू को बहुत पहचानेगा", तो ऐसी सूरत बनाते हैं, मानो गोली ही तो लगी है। पर अपने साथियों के गोल में पहुँचते ही वह वह गुलछर्रे उड़ाते हैं कि मा-बाप सुनते ही दंग हो जायँ, और उनसे पनाह माँगें ! बात यह है कि अच्छी और बुरी बातें, दोनों ही कोई मा के पेट से लेकर नहीं आता। छोटी-छोटी बातें भी बिना सिखाए किसी को नहीं आतीं। भले आदमियों के जितने लक्षण हैं—अर्थात् सच बोलना, चोरी न करना, स्वच्छता रखना, खाने-पीने और दूसरे के साथ व्यवहार करने में अपने ऊपर संयम रखना—उन्हें लड़के वर्षों की शिक्षा के बाद सीखते हैं। कुलीन जातियों में, छुटपन से ही, इनका अभ्यास होता है, जिससे कभी-कभी ऐसा धोखा होता है, मानो जन्म से ही इन लड़कों में ये गुण वर्तमान थे।

इसके प्रतिकूल नीच जातियों के लड़के, जिन्हें किसी प्रकार की शिक्षा नहीं मिलती, गंदे भी होते हैं, और सदा लड़ने-

भिड़ने, लूट-मार मचाने के लिये तैयार रहते हैं। इसमें संदेह नहीं कि कोई मा-बाप, बिना सिखलाए-समझाए, लड़कों को उन्हीं पर छोड़ना पसंद न करेंगे। छोटी-मोटी बातों में जब यह हाल है, तो आंतरिक जीवन की कठिनाइयों के विषय में क्या कहा जा सकता है। लड़के क्या जानें कि बुरे विचारों को चित्त से कैसे हटाया जाता है, इच्छा-वासनाओं को किस प्रकार वश में किया जाता है? उनके सामने तो कोई आदर्श होता ही नहीं। उनके सभी ज्येष्ठ-संबंधी अपने ऊपर बीती हुई घटनाओं को गुप्त रखते हैं, और उनको किसी तरह की सलाह भी नहीं देते। लड़का बेचारा क्या करे? अंधकार में भटकता हुआ ठोकरें खाता है।

इस कची उमर में न उसमें विचार करने की शक्ति होती है, और न भले-बुरे की पहचान; न स्पष्ट रूप से उसे अपना कर्तव्य दिखलाई पड़ता है, और न उसके चित्त में इतनी दृढ़ता ही होती है कि वह उस परीक्षा में ठहर सके। सब बातों के ज्ञान के साथ धार्मिक बुद्धि हो, और संकल्प-शक्ति के साथ उत्तम भाव हों, तो काम चले। तभी तो प्रति-दिन लाखों लड़के पाप के दलदल में फँसते हैं, और उनकी कोई सुधि लेनेवाला नहीं होता। अस्तु, आज तक जो हुआ, उसे जाने दीजिए। इस ढोंग को यहीं छोड़िए, और अब

से अपनी यह निष्ठा बनाइए कि "न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते," अर्थात् सच्ची जानकारी से बढ़कर चित्त को शुचि एवं पवित्र बनानेवाली कोई दूसरी शक्ति नहीं है।

बचपन से जवानी

हमारे जीवन के प्रत्येक पल में कोई-न-कोई विलक्षण
होती है । और नहीं, जन्म-काल को ही लीजिए । उसमें कैसे-
कैसे क्लेश और भय आते हैं ! सद्यःजात शिशु उन्हें तब
रके इस संसार में जब पहलेपहल आँखें खोलता है, तो
ना चकित होता है ? इस नवीनावस्था के अनुकू
होने में उसे कितना प्रयास करना पड़ता है । परंतु, इ
ी, वह काल किशोर-काल के समान महत्त्व नहीं रखता;
आखिर जन्म केवल दशा का एक परिवर्तन ही है ।
र जब तरुणावस्था आती है, तो एक बिलकुल अपूर्व
नुपम घटना घटती है । उस समय मनुष्य का केवल
ी नहीं बदल जाता, वरन् उसका मन और शरीर
रूप से नया हो जाता है । उसमें

जाग उठती हैं, उसका सारा कलेवर और-का-और हो जाता है।

यों तो पग-पग पर नई अवस्था की नई आवश्यकताएँ होती हैं। अतएव जिन लोगों पर नवयुवकों की रक्षा का भार है, उन्हें सदैव इसका ध्यान रखना चाहिए। पर बालक-बालिकाओं का चौदहवाँ वर्ष विशेष संकट का होता है। यह समय उनके प्रौढ़ होने का है। इस अवस्था में उनका बनना-बिगड़ना मानो जीवन-पर्यंत का बनना-बिगड़ना है। यदि आत्मीय स्वजन, कुछ कष्ट उठाकर, अपने अल्प-वयस्क लड़के-लड़कियों का इस समय निरीक्षण करें, तो आगे की बहुत-सी निराशा और दुश्चिंता से वे छुट्टी पा जायँ।

जिस तरह प्रकृति के और काम नियम से होते हैं, वैसे ही प्रौढ़ावस्था के भी अनुभव नियम के अंतर्गत हैं। प्रायः सबकी चाल इस उमर में एक-सी होती है। आपका छोटा भाई या लड़का इससे अलग नहीं। जैसे और लोग चंचल होते आए हैं, वैसे ही वह भी चंचल होता है। जो औरों के नाश और पुष्टि के मार्ग हुए हैं, वही उसके भी होंगे। इसलिये अपने लड़कों के गुण और दोष, दोनों का परिचय पाना आपके लिये संभव है। यथासाध्य आप उन युवकों के निग्रह का उपाय कर सकते हैं।

यौवन-काल का आना कोई आकस्मिक बात नहीं है, य
जिन लोगों को इसके लक्षण नहीं मालूम हैं, उन्हें कभी-क
वह सहसा प्रकट होकर विस्मय में डाल देता है। साधारणत
पंद्रहवें साल से पचीसवें साल तक, प्राय: १० वर्ष की, इसकी
अवधि होती है। पर सबकी एक ही दशा नहीं होती।
उनमें थोड़ा-थोड़ा भेद होता है। इतना अवश्य है कि
पचीसवाँ वर्ष लगते-लगते सभी आदमी जवान हो जाते हैं।

यहाँ एक बात और ध्यान में रखने योग्य है। वह यह
कि चाहे जीव-विज्ञानवाले किसी प्राणी को—जब वह बच्चा
पैदा करने योग्य हो जाता है—प्रौढ़ कह दें; पर मनुष्य इस
नियम के अधीन नहीं है। जिस दिन से मनुष्य प्रौढ़ होने
लगता है, उसी दिन से वह पूरा प्रौढ़ नहीं कहा जा
सकता। किसी प्रकार वह गर्भाधान का कार्य-संपादन करने
की क्षमता भले ही रखता हो; पर केवल इसीलिये वह श्रेष्ठ
नहीं कहा जा सकता। जैसे मनुष्य के व्यक्तिगत विकास
और उन्नति की कोई सीमा नहीं है, और इस पक्ष में कोई
दूसरा जीव उसकी बराबरी नहीं कर सकता, वैसे ही वह
बहुत दिनों तक क्रमश: थोड़ी-थोड़ी प्रौढ़ता प्राप्त करता रहता
है, यहाँ तक कि संपूर्ण रूप से प्रौढ़ होने में उसे अनुमानत: १०-
१२ साल से कम नहीं लगते।

दूसरे जीवों को इतनी शीघ्रता से प्रौढ़ होते देखकर यह जान पड़ता है कि उनसे प्रकृति का केवल यही अभिप्राय है कि जैसे-तैसे वे अपना आहार इकट्ठा कर लें, मैथुन-क्रिया के योग्य हो जायँ, बच्चे जनें और मर जायँ। उनके जीवन का दूसरा उद्देश्य ही नहीं होता। इसके प्रतिकूल संतानोत्पत्ति से ही मनुष्य का जीवन सार्थक नहीं होता। जितने दिन वह पृथ्वी पर रहता है, अपनी जाति और राष्ट्र के शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वभाव में अपने उद्योग से सुधार करके अपने युग के धर्म और सभ्यता में योग देता है। जैसा कठिन और महान् उसका कार्य होता है, वैसा ही उसका शिक्षा-काल (Probation) भी होता है। यहाँ तक कि और जानवरों के मुकाबले मनुष्य को संसार के लिये तैयारी करने में सबसे अधिक दिन लगते हैं। इस तैयारी के बाद वह सृष्टि का सिरताज हो जाता है। परंतु इसके अभाव में मनुष्य अन्य सब जीवों से निकृष्ट सिद्ध होता है।* जब यह बात है, तो पशु और पक्षियों की भाँति मनुष्य को संतानोत्पत्ति में उतावली करना कितना वृथा है, यह आप अच्छी तरह समझ सकते हैं।

कभी-कभी लौकी या कुम्हड़े की लता में पहला फूल देख-

*Human child most help less'—Darwins.

कर जो यह समझ लेते हैं कि अब फल आनेवाले हैं, उन्हें बड़ा धोखा होता है; क्योंकि पहले फूल थोड़े ही दिनों में मुर-झाकर झड़ जाते हैं, और उसमें बहुत दिनों तक फल नहीं लगते। ठीक वैसे हो किशोरावस्था की क्षणिक उत्तेजना और बल का अनुभव कर जो अविवेकी युवक अपने को सब प्रकार समर्थ मान बैठते और संसार के सब कामों में दखल देने लगते हैं, उनको अपनी दुर्बलता और अयोग्यता का बहुत जल्द पता लग जाता है, और वे अपनी तरलता और अधीरता के लिये खूब पछताते हैं।

कवि ने जो कहा है—छुटी न शिशुता की झलक, यौवन उमग्यो अंग—वह अक्षरशः ठीक है। देखने में हमारे किशोर बालक बिलकुल अबोध बच्चों-से मालूम पड़ते हैं। बात-बात में रूठना और मचलना, ज़रा-सा डाटने पर आँखों में आँसू भर लाना, उठने-बैठने में अल्हड़पन, तनिक से आनंद में मस्त हो जाना, झूमकर चलना, अट्टहास करना, सब बातों में उद्वेग दिखलाना, मुँह-लगी बात करना, बड़ों से बहस करना, अहंकार में किसी को कुछ न गिनना—ये सब इस मय के लक्षण संगति-शिक्षा के ऊपर निर्भर नहीं हैं। ये वस्था पाकर अपने-आप प्रकट हो जाते हैं। यौवन-काल में 'आंतरिक परिवर्तन' होते हैं, उनके ये बाहरी चिह्न-मात्र हैं।

पर हमारे कहने का यह तात्पर्य नहीं कि शिक्षा का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। एक सीमा के भीतर उपदेश से निस्संदेह लाभ होता है।

इसलिये छोटी अवस्था में लड़के कितने भी हठी और अपने मन के क्यों न हों, उन्हें समझाने-बुझाने और सन्मार्ग में लाने का प्रयत्न कितना ही निष्फल क्यों न प्रतीत होता हो; पर उनसे निराश नहीं हो बैठना चाहिए। दूसरी ओर यह भूलना भी उचित नहीं कि हमारे बहुत कहने-सुनने पर भी युवकों की जिधर प्रवृत्ति होगी, उधर ही वे जाते हैं। प्रकृति की बलवती शक्तियों को एकाएक अतिक्रम करना बहुत अंश में असंभव है। इधर हम अपनी युक्ति लिये ही रहेंगे और उधर, संस्कार के अनुसार, युवकों का भविष्यत् निर्धारित हो जायगा।

पर साथ-ही-साथ यह भी कहना पड़ता है कि यद्यपि भावी बलवान् है, तथापि यदि हम, कौमारकाल में, अपने बच्चों के विचारों को शुद्ध और चरित्र को निर्दोष रखने का यथेष्ट उद्योग करें, तो उनके ऊँचा-नीचा पाँव रखने और किंचित् काल के लिये नष्ट होने पर भी उनकी दशा उतनी शोचनीय नहीं हो सकती। विचारने की बात है कि ६-७ वर्ष की अवस्था से जो बालक उचित व्यायाम, आहार, धार्मिक विचार और

व्यापार में सिखा या चुका है, वहाँ वह छः महीने के अन्दर या कुछ व्यवहार में क्या फल पहुँचनेवाला है! लड़के का बिगड़ने पर भी बहुत शीघ्र पेट आयगा और दूसरे उस पर दुष्कर्मों का कोना गहरा प्रभाव नहीं पड़ेगा—इसमें तो उतनी हानि न उठानी होगी।

माता-पिता अपने बच्चों को अच्छे-से-अच्छा भोजन और वस्त्र देते हैं; उनकी दशा अच्छी नहीं हुई, तो आप भूखे रहते हैं, पर उन्हें खिलाते हैं, स्वयं चिथड़े लगाते हैं, पर उनका अंग ढ हैं; निद्रा, विश्राम और सुख में, अपने ऊपर कष्ट सहन उन्हें किसी तरह की कमी नहीं होने देते—उनके सुख पर कि प्रकार की चिंता की छाया नहीं देख सकते; राह-बाट में उन्हें धूल तक देखने से बचाते हैं। कहाँ तो अपनी संतान की ओर कोमल भाव और कहाँ उन दूषित क्रियाओं की ओर, जिन सीखकर उनके बच्चे अपने हाथ से अपना खून करते हैं, यह उदासीनता!

बहुतेरे माता-पिताओं को तो यह भी सुधि नहीं रहती कि हमारे लड़कों को किस बात का ज्ञान हो रहा है, और उसका कैसा परिणाम होगा! वे यही कहते रह जाते हैं कि अभी तो हमारे लड़के के दूध के दाँत भी नहीं टूटे हैं—वह तो अभी कुछ भी नहीं समझता। उधर बालकों की नस-नस में

एक नई शक्ति का संचार होने लगता है। उनके हृत्पिंड, मस्तिष्क में अद्भुत तेज भर जाता है। ऊपर से देखने से बालक कैसा ही भोला क्यों न मालूम पड़ता हो; पर वास्तव में, "वह रहस्यों की पोटली या अलौकिक चमत्कार का घर, वैज्ञानिक घटना का द्योतक या वियोगांत अभिनय का रंगस्थल, दैवाधीनता का प्रमाण या स्वतंत्रता का परिचय, भय की तर्जनी या आशा का संकेत" सभी एक साथ-साथ है।

ऐसी स्थिति में हम लोगों का कर्तव्य स्पष्ट है। जहाँ तक हो इस यौवन-काल के भय और कष्ट से हमें लड़कों की रक्षा करनी चाहिए, और उस समय तक उन्हें सँभाले रहना चाहिए, जब तक वे स्वयं अपने को सँभालने के योग्य न हो जायँ। संभव है, इसमें हमारा बहुत वश न चले; पर इसमें हम उन्हें थोड़ा-बहुत भी सहारा दे सकें, तो वही बहुत है। बालकों की शुभ कामना से यहाँ जो कुछ हम सत्य की चर्चा करेंगे, वह अवश्य कल्याणकारी होगी। भगवान् कृष्ण ने कहा है—

"स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।"

—भगवद्गीता

अर्थात्—इस धर्म का स्वल्प भाग भी महान् भय से रक्षा करता है।

यौवन-काल को जीवन-संग्राम के लिये तैयारी का समय

समझना चाहिए। उस समय जो भुजा
अंग में स्फूर्ति, हृदय में साहस और ओज
उनका यह मतलब नहीं है कि अब आप पूरे म
और सयाने आदमियों की तरह बेसटके अनेक
भोग-विलास में लिप्त हों। उनसे केवल इतनी सूचना
कि अब से आप कोरे बालक नहीं रहे—प्रकृति
वधान करती है कि खेलने-कूदने के अतिरिक्त आप
कर्तव्याकर्तव्य का भी ध्यान रखिए। आर्य-धर्म में उप
की विधि और यवनों में 'टौशार' का संस्कार इस अव
पर आपको सतर्क करते हैं। गुरु का आदेश है—

"उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च॥"

—मनु

अर्थात्—उपनयन के बाद गुरु शिष्य को आदि में
(मानसिक और कार्य की) भी शिक्षा दे। फिर आचार-वि
हवन इत्यादि तथा संध्योपासन सिखलावे। अर्थात् अ
आचार-विचार के लिये अब आप उत्तरदाता हुए। कुल
मर्यादा की रक्षा और देश की रीति-नीति का पोषण
आपका धर्म हुआ।

यौवन-काल का शारीरिक परिवर्तन

अपने देश के आदर्श का मान और गौरव बढ़ाने के लिये प्रत्येक युवक को तैयार होना चाहिए। यदि उनमें से कोई पूछे कि यह भार हमको क्यों सौंपा गया, तो उत्तर मिलेगा कि अब आप स्वयं अपने शरीर को तौलिए, और अंतःकरण को परखिए। आपको जान पड़ेगा कि हाल में आपके स्वभाव में भीतर-ही-भीतर एक अद्भुत रासायनिक परिवर्तन हुआ है। इस परिवर्तन से आपके अंदर जीव-तंतु (Germ plasm) की क्रिया बदल गई है, और आपका एक दूसरा जन्म हो गया है। ब्राउन, सेकार्ड और बौनकौर्ड (Brown, Sequard, Bonchord) आदि नामी वैज्ञानिकों ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि जबसे यह क्रिया आरंभ हुई है, तब से आपके शरीर में एक रस (द्रव्य) भीतर-ही-भीतर

समझना चाहिए। उस समय जो भुजाओं में
अंग में स्फूर्ति, हृदय में साहस और ओज आता
उनका यह मतलब नहीं है कि अब आप पूरे मर्द हो ग
और सयाने आदमियों की तरह बेखटके अनेक
भोग-विलास में लिप्त हों। उनसे केवल इतनी सूचना
है कि अब से आप कोरे बालक नहीं रहे—प्रकृति अ
सावधान करती है कि खेलने-कूदने के अतिरिक्त आप
कर्तव्याकर्तव्य का भी ध्यान रखिए। आर्य-धर्म में उपन
की विधि और यवनों में 'टौंशार' का संस्कार इस अवस
पर आपको सतर्क करते हैं। गुरु का आदेश है—

"उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च॥"

—मनु

अर्थात्—उपनयन के बाद गुरु शिष्य को आदि में शौच
(मानसिक और कार्य की) भी शिक्षा दे। फिर आचार-विचार,
हवन इत्यादि तथा संध्योपासन सिखलावे। अर्थात् अपने
आचार-विचार के लिये अब आप उत्तरदाता हुए। कुल
मर्यादा की रक्षा और देश की रीति-नीति का पोषण
आपका धर्म हुआ।

मुख पर लावण्य है, छाती में अकड़ और चाल में गर्व है, अंग-अंग में सुघराई और घुलघुलापन है। जिससे आप मुसकिराकर बात करते हैं, जिधर आप झूमते हुए निकल जाते, सुर से गुन-गुनाते जाते हैं, लोग विवश हो आपको घूरते हैं। आप यह सम-झने की भूल न कीजिए कि लोग आपके नैसर्गिक रूप-सुंदरता के कारण आप पर लट्टू होते हैं। यह तो सारा खेल उस रस का है, जो आपके चौदहवें वर्ष में पैर रखते ही देह में उमड़ता आ रहा है, और इतनी कमनीयता बरसा रहा है। इन सबमें केवल एक-आध बात फीकी है। एक तो ज्यों-ज्यों दिन बीतते हैं, त्यों-त्यों आपका वह कोकिल-कंठ सुनने में नहीं आता; धीरे-धीरे वह क्षीण मधुर स्वर भारी और मोटा होता जाता है। दूसरे, गालों पर भूरी लोम-राशि कुछ रंग पकड़ती जाती है, और ताज्जुब नहीं कि १६-१७ लगते-लगते वे चिकने काले बाल आपकी ठुड्डियों को छिपा लें।

ये तो बाहरी और साधारण परिवर्तन हैं। युवक के मानसिक और नैतिक जीवन में और भी एक-से-एक बढ़कर हेर-फेर हो जाते हैं। पर यदि यहाँ पर हम बात के बिना बताए कि इस रस का स्रोत कहाँ से और कैसे चलता है, हम उस फेर-फार का सविस्तर उल्लेख करें, तो कदाचित् उस पर कोई विश्वास न करे। अतएव हमें कहना पड़ता है कि उस रस का निर्गम-

पसीजकर आपके रुधिर में मिलने लगा है। यह रस अ
मोल है। इसके मिश्रण की जितनी महिमा गाई जा
थोड़ी है।

क्या कभी आपने सोचा है कि जब गर्म हवा का झोंका लग
है, तो आँखों में पानी कहाँ से भर आता है; अथवा स्वादि
भोजन या मनोहर पके फल को देखकर मुँह से राल कैसे टपक
लगती है? सुनिए, मनुष्य के शरीर में जगह-जगह पर छोटे
छोटी थैलियाँ होती हैं, जिन्हें ग्लैंड (Gland) कहते हैं
ये गिलटियाँ अथवा थैलियाँ एक विशेष प्रकार का रस छोड़ने
लगती हैं, जो किसी खास अंग के लिये भी, सारे शरीर के
लिये बहुत उपयोगी हैं, यह अश्रु अथवा राल इसी तरह की
थैलियों से निकलती है। ठीक इसी ढंग से जो थैलियाँ जन्म से
ही आपके शरीर के एक भाग में मौजूद थीं; पर आज तक
उभरी न थीं, वे अब काम करने लगी हैं। इन थैलियों और
दूसरी साधारण थैलियों के बीच केवल इतना अंतर है कि
और थैलियों का पसीजा हुआ द्रव्य बाहर निकलकर नष्ट
हो जाता है; पर इन थैलियों का द्रव्य अभी भीतर-ही-भीतर
घुल रहा है, और क्रमशः आपके प्रत्येक अवयव में फैल-
फैलकर उसे दृढ़ और कांतिमय बना रहा है।

यह उसी का प्रभाव है कि आपकी आँखों में इतनी ज्योति है,

स्थान पाश्चात्य विद्वानों के मत से अंडकोष है। नाक, का
जिह्वा इत्यादि इंद्रियों के निकट जैसी थैलियाँ हैं, वैसी यह
पर भी हैं। उनमें दो प्रकार का स्राव होता है; एक भीतरी,
दूसरा बाहरी। अंडकोषवाली थैलियों का बाहरी स्राव सुख-
स्पर्श से या काम-चिंतन से होता है। पर भीतरी स्राव,
किशोरावस्था से लेकर २५ वर्ष तक निरंतर होता रहता है।
जाँच करके देखा गया है कि जिन बकरे या घोड़ों के अंड-
कोष की थैलियाँ चीरकर निकाल ली गई हैं, वे सुस्त, पसमाँदे,
डरपोक और निर्जीव हो गए हैं। उनका सिर सदा झुका
रहता है—वे तनकर खड़े नहीं हो सकते। वे परिश्रम करने
से जी चुराते हैं, और लड़ने के समय भाग खड़े होते हैं। देखने
में उनका शरीर स्थूल और बलवान् भले ही मालूम हो, पर
होते हैं वे एकदम निकम्मे।

मनुष्य-श्रेणी में खोजों और हीजड़ों की दशा देखिए। वे
कैसे नीच और हीन हो जाते हैं! दासत्व और चुगलखोरी में
उनका समय जाता है। ताली बजा-बजाकर वे भीख माँगते
फिरते हैं। इन सब दोषों की जड़ कोष की थैलियों का न होना
... बचपन के बाद उन थैलियों से रस निकालने का जब समय
... है, और वहाँ थैलियों का नाम तक नहीं रहता, तो देह
... नहीं हो पाती

शरीर ऊपर से चाहे

हैं। जब कि शिक्षा समाप्त कर कार्य-क्षेत्र में उतरने की घड़ी आती है, तो वे शक्तिहीन और रोग-जर्जर दिखाई पड़ते हैं।

चतुर चित्रकार ने वह क्या ही अच्छा दृश्य (Picture) खींचा था, जिसमें बीच में तो एक अबोध शिशु बैठा है, और उसी की दोनों ओर भिन्न-भिन्न शिक्षा और सँभाल के कारण, अलग-अलग पाँति में, दाहिनी ओर पहले तो सुरक्षित बालक, फिर विद्यार्थी, आगे प्रतिष्ठित कर्मचारी और अंत में अपने परिवार से घिरा हुआ सुखी वृद्ध दिखाई पड़ता है, और बाईं ओर आवारा लड़का, फिर सड़कों में भटककर मदक, नशा पीनेवाला, फिर भिखारी और अंत में अस्पताल में पड़ा हुआ निस्सहाय, चिररोगी का फ़ोटो दृष्टिगोचर होता है।

यह दुर्दशा केवल रस-स्राव के बरबाद करने का नतीजा है। जो इस रस के वेग में आकर ऊटपटाँग करने लगता है, उसकी इससे भी अधिक अधोगति होती है; परंतु शांत-भाव से अपनी किशोरावस्था में इस रस के पसीजने पर भी जो अपने से ज्येष्ठ भाई-बंधु के आदेश मानकर संयम से रहता है, उसकी दिनोंदिन बुद्धि विमल और शरीर तेज-पूर्ण होता जाता है। जब तक देह में इस रस का संचार होता है,

शिक्षा और संयम

किशोरावस्था में भले घर के लड़के सुरक्षित रक्खे जाते हैं, उनका शरीर उचित आहार और व्यायाम द्वारा पुष्ट बनाया जाता है। सब प्रकार की विद्या एवं कला का उन्हें अभ्यास कराया जाता है, जीवन में किस तरह बर्तना चाहिए, समाज के नियमों का किस प्रकार पालन करना चाहिए—ये बातें उन्हें सिखाई जाती हैं। भले आदमियों की तरह बातचीत करना, छोटे-बड़े सबके साथ शिष्टता का व्यवहार, अपने अधिकारों का ज्ञान और कर्तव्य-पालन का उन्हें पाठ पढ़ाया जाता है। अभिप्राय यह है कि किशोरावस्था का समय, जब कि शरीर नीरोग और मन प्रफुल्लित होता है, बहुत ही अच्छे उपयोग में आता है। परंतु नीची श्रेणी के लड़के, जो किसी की देख-रेख में नहीं होते, आचार-भ्रष्ट होकर अपने को सब तरह से बिगाड़ डालते

यह रोग के आक्रमण को रोक सकता है; किसी प्रक
थकावट या पीड़ा पास नहीं फटकती। इसके म
अच्छे-अच्छे हौसले, अनेक शुभ-आकांक्षाएँ आती
और उनकी सिद्धि के उपाय भी उसे सूझते हैं। मनु
के २४ या २५ वर्ष तक यह स्राव विना विघ्न चल
रहता है।

जीवन-यात्रा के लिये सामग्री इकट्ठा करने का बस, यही
अवसर है। जो अपना हित चाहता है, उसे चाहिए कि वह
किसी वयोवृद्ध, अनुभवी और धर्मज्ञ गुरु की शरण ले। उस
पर जो कुछ बीतती हो, वह सब खोलकर उससे कहे—अपने
आंतरिक जीवन की सब कठिनाइयाँ बिना संकोच उससे बतावे।
बहुतेरे भाग्यहीन लड़के नौकर-चाकर या अपने साथियों
से तो इसकी चर्चा करते हैं; पर जिन लोगों से उन्हें कुछ सत्-
परामर्श मिल सकता है, जिनके सामने अपना भेद बताने से
यतेंद्रिय होने का मार्ग मालूम हो सकता है, उन्हें इधर-उधर
की बातों में वे टाल देते हैं। कुछ कहते भी हैं, तो सच-झूठ
की ऐसी खिचड़ी पकाते हैं कि वह बेचारा चक्कर में
पड़ जाता है, और इन्हें किसी प्रकार की सहायता नहीं दे
सकता।

ऐसा भी देखा गया है कि बहुधा दुराचारी युवकों को अपने

से छोटे लड़कों की आत्म-कहानी सुनने में बड़ा सुख मिलता है, और वे उन्हें बहका-बहकाकर और भी भ्रम में डाल देते हैं। स्मरण रखिए, जिस पुरुष के समीप बैठने में आपको एक भीतरी शांति और गंभीरता का अनुभव न हो, उससे अपना भेद बताने में कोई उपकार की संभावना नहीं। पर हम यह भी नहीं कहते कि आप चुप हो बैठिए; अवश्य आप कोई ऐसा सज्जन ढूँढ़िए, जिसे देखकर आपके चित्त में सात्त्विक बुद्धि का विकास हो, और आप अपने मन की मलीनता को दूर करके अपने स्वभाव की पाशविक वृत्तियों पर विजय प्राप्त करने का पवित्र संकल्प कर सकें।

यह जरूर है कि वृद्ध और युवक में सहानुभूति बहुत कम देखी जाती है। उधर तो युवकों की हँसी-ठठोली और चंचल स्वभाव देखकर बूढ़े अकारण ही दूर ही से कुढ़ा करते हैं, और इधर उनके पोपले मुँह चिड़चिड़े और सशंक स्वभाव से हारकर नवयुवक उनसे दूर भागता है। इसमें हानि है केवल युवकों की; क्योंकि पृथिवी पर मानव-जाति का कल्याण तभी संभव है, जब युवकों के दृढ़ शरीर का मेल वृद्धों के परिपक्व व्यावहारिक ज्ञान से होता है। पर बात यह है कि वृद्ध लोगों में बुद्धि होती है, तो सामर्थ्य नहीं, और युवकों में सामर्थ्य है, तो बुद्धि नहीं। युवा और वृद्ध, दोनों को मिलकर काम करने से बढ़कर दुनिया

लड़के हैं, इन्हें खेलने दो। पर यही लड़के जब अज्ञानता के कारण घोर अत्याचार कर बड़े होते हैं, तो रो-रोकर उन्हें गालियाँ सुनाते हैं, और कहते हैं कि ये हज़रत चौबीसों घंटे हमारे साथ ही रहते थे; पर इन्होंने हमें तनिक न रोका—खूसट बुड्ढों ने हमें सत्यानाश होते देखा; पर इन्होंने हमारी बाँह न पकड़ी!

ख़ैर, उन युवकों का यह दुर्भाग्य था कि उनके माता-पिता ज्योतिषी न थे, उनके कुछ बिना बताए अटकल से उनके चाल-चलन का पता लगानेवाला कोई ऐसा दयालु और दूरदर्शी मित्र न मिला, जो उन्हें यौवन-मद के अनर्थ से बचाता; पर इन पंक्तियों पर जिन छोटी उमर के पाठकों की दृष्टि पड़ रही है, वे तो अब नहीं कह सकते—"अरे! किसी बुड्ढ ने मुझे चेतावनी न दी! मैं लुट गया; पर मेरी किसी ने रक्षा न की!"

अब देखो, चपल पाठक! आज तुम अच्छे घिरे हो। हमारा वक्तव्य सुनकर या तो तुम सत्य का ग्रहण करो और अपना सुधार अपने हाथ में लो, या आज से जो कुछ उपद्रव और पाप-कर्म करो, वह जान-बूझकर दिनदहाड़े अपना गला अपने हाथ घोटने की नियत से करो। तुम्हारे लिये अब कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

में दूसरा सुधार नहीं। ग्रीस, रोम, भारतवर्ष आदि देशों
इतिहास में वही समय प्रसिद्ध काल हुआ है जिसमें युवकों
जीवन को ठीक कर वृद्धगणों ने उनसे सुख, आरोग्य, स्वतं
और जातीयता के नियमों का अनुशीलन कराया है। 'इस
निमित्त, चाहे बूढ़ों का संग उतना प्रिय और चित्तग्राही न हो,
उसमें अपना भला समझकर—विशेषकर किशोरावस्था मे
अपने घर या पड़ोस के बूढ़ों के पास बैठना चाहिए, और उ
बातों पर, उनमें कुछ तत्त्व मानकर, ध्यान देना चाहिए।
बहुधा हमारे वृद्ध सरल प्रकृति के होते हैं, और वे वर्तमा
समय की सामाजिक बुराइयों का हाल नहीं जानते। आजक
के नए छोकरों की चाल वे नहीं पहचान सकते
मोटी-मोटी बातों पर उनका ध्यान जाता है; पर ऐंच-पेंच
में उनकी बुद्धि काम नहीं करती। सूर्यास्त के उपरांत वे
युवकों को घर से बाहर न हिलने देंगे; लड़कों के
नक़द रुपए न आने देंगे। पान न खाना, सामने झुका
टोपी पहनना मानो नेकी का पुतला होना है। लड़कों
कोई गुप्त व्यसन हो, वे घर ही के भीतर अपने बाप औ
चचा की कोठरी की बराल ही में तरह-तरह के ऊधम
मचाते हों, आपस ही में कैसी ही घृणित क्रियाएँ करते हों;
पर उन बूढ़ों को कोई संदेह नहीं होता। वे

सफलता का अभिमान और खेल के मैदान में बाजी लेने का स्वाद चखाया जावे, तो भी वह, कभी भूल कर, क्षणिक इंद्रिय-सुख में लिप्त हो सके ! जो विद्यार्थी सदा अपनी परीक्षाओं में कृतकार्य होकर पारितोषिक लेता रहा है, जो बहुत थोड़ी ही अवस्था में स्कूल वा कालेज की ऊँची कक्षाओं में पढ़ता रहा है, जो चतुर्दिक अपने मित्र और सहपाठियों की ईर्ष्या का पात्र हुआ है, और जो अपने प्रोफेसर और मास्टरों से प्रतिष्ठा पाकर अपने विद्यालय की लिटरैरी सुसाइटी वा डिबेटिंग सुसाइटी का मंत्री वा खजानची नियुक्त हो चुका है, उसी का हृदय जानता है कि ख्याति और प्रसिद्धि का सुख कैसा अनिर्वचनीय होता है !

गणित के जिस सवाल (Problem) को ऊँचे दरजेवाले नहीं निकाल सकते या जिसके करने में अध्यापक महाशय को भी सिर खुजाना पड़ता है, उसे चटपट दो-तीन स्टेप में निकालनेवाले युवक की आत्मा में कैसा आह्लाद होता है ? जिस विषय पर सप्ताह-भर लोग पुस्तकें उलट-पलट कर सोचा-विचारा करते हैं, उस पर थोड़ी ही-सी तैयारी के उपरांत एक सार-पूर्ण और मनोहारिणी वक्तृता देकर जब युवक अपना आसन ग्रहण करता है, उस समय उसके रोम-रोम में कैसा आनंद उमड़ता है ? कितने ही विद्यार्थी तीन-तीन

यह मानना ही पड़ेगा कि नवीन अवस्था की नवं
आशाएँ, नवीन उत्साह और नवीन पराक्रम व्यर्थ गँवाने के
लिये नहीं हैं। जिस शक्ति-सामर्थ्य से संसार के एक-से
मणि-मुक्ताओं से बढ़कर अनमोल पदार्थ हस्तगत हो स
हैं, उससे यदि कोई पोत और काँच प्राप्त करके ही संतो
कर ले, तो उसकी बुद्धि को बलिहारी!

पर मनुष्य का स्वभाव विचित्र है! वह प्रकृति के मोह
और विकार में आकर कभी-कभी गुमराह हो ही जाता
है। उसके जी में एक ओर सुखी, गुणज्ञ और संपन्न होने
की लालसा ज़ोर करती है; दूसरी ओर काम-तृप्ति की ज्वाला
उसे छिन्न-भिन्न कर डालती है—मनुष्य का यही अकेला
शत्रु उसके सब हौसले बिगाड़ देता है। यदि लोग इससे
सावधान हो जायँ, और कामासक्त होने से अपने को बचा
लें, तो फिर संसार में कोई ऐसा दीखे ही नहीं, जो
दुखी, मलिन वा संतप्त-हृदय हो। उस "महापाप्मा
महावैरी" काम को जो सर कर लेता है, उसकी
चढ़ती उमर के साहस और शौर्य के आगे सभी सिद्धियाँ
हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं।

कोई ऐसा युवक भी होगा, जिसे उसकी निर्दोष और छोटी
अवस्था में एक बार पूर्ण स्वास्थ्य का आनंद लेकर

र ठीक-ठीक उतार देना कितनी प्रतिभा का काम ! जो देखता है, वही दाँतों-तले अँगुली दबाता है— सकी सराहना करता है, और साँस लेकर कहता है— 'हाय ! यह भी एक आदमी है, और मैं भी एक आदमी हूँ ?"

विश्वास रखिए, ये सब युवावस्था में सँभलकर चलने का प्रताप है। लोग यह नहीं जानते कि जन्म से और माता-पिता के संस्कार से हमारे स्वभाव में कैसे-कैसे गुण पड़े हैं। जब तक अपने को यत्न-पूर्वक सुरक्षित रखकर हम उन गुणों को विकास का अवसर नहीं देते, तब तक हमें अपने प्रारब्ध को दोष नहीं देना चाहिए।

विचार करके देखिए, तो ऐसे आदमी बहुत थोड़े हैं, जो बालकपन से ही अपने को मूर्ख, व्यसनी और कुचाली पाते हैं। उनमें अधिकांश लोगों ने अपने को जान-बूझकर ऐसा बना रक्खा है, और फिर अवसर निकल जाने पर दैव और भाग्य की दुहाई देते हुए जीवन व्यतीत करते हैं।

इसीलिये यह नियम है कि युवावस्था की नई शक्ति और उमंग से पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। पर इसमें शीघ्रता करनी चाहिए, क्योंकि युवावस्था के जो दो भाग हैं—एक पूर्वार्द्ध १४ से १७-१८ साल तक और दूसरा परार्द्ध, १८ से २५ साल तक—उनमें से जितना काम पूर्वार्द्ध में निकल

र ठीक-ठीक उतार देना कितनी प्रतिभा का काम
! जो देखता है, वही दाँतों-तले अँगुली दबाता है—
उसकी सराहना करता है, और साँस लेकर कहता है—
"हाय! यह भी एक आदमी है, और मैं भी एक आदमी हूँ?"

विश्वास रखिए, ये सब युवावस्था में सँभलकर चलने का प्रताप है। लोग यह नहीं जानते कि जन्म से और माता-पिता के संस्कार से हमारे स्वभाव में कैसे-कैसे गुण पड़े हैं। जब तक अपने को यत्न-पूर्वक सुरक्षित रखकर हम उन गुणों को विकास का अवसर नहीं देते, तब तक हमें अपने प्रारब्ध को दोष नहीं देना चाहिए।

विचार करके देखिए, तो ऐसे आदमी बहुत थोड़े हैं, जो बालकपन से ही अपने को मूर्ख, व्यसनी और कुचाली पाते हैं। उनमें अधिकांश लोगों ने अपने को जान-बूझकर ऐसा बना रक्खा है, और फिर अवसर निकल जाने पर दैव और भाग्य की दुहाई देते हुए जीवन व्यतीत करते हैं।

इसीलिये यह नियम है कि युवावस्था की नई शक्ति और उमंग से पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। पर इसमें शीघ्रता करनी चाहिए, क्योंकि युवावस्था के जो दो भाग हैं—एक पूर्वार्द्ध १४ से १७-१८ साल तक और दूसरा परार्द्ध, १८ से २५ साल तक—उनमें से जितना काम पूर्वार्द्ध में निकल

यदि युवक अभी तक अचारवान् रहा है तथा उसके चरित्र में दृढ़ता है, तो दिन में किसी तरह वह समय काट लेता है ; पर निद्रा में अचेत होते ही उसकी कल्पना बहुत ही कुढंगे चित्र उतारने लगती है, और उसके प्राणों से भी प्यारा अमूल्य रस शरीर से वह निकलता है । पहले वह ऊर्ध्वरेत था, पर अब वह "अधःरेत" हो गया—उसका वीर्य शरीर में न रहकर अपने आप बाहर को दौड़ता है । पहले उसकी गति स्नायु और मस्तिष्क की ओर थी, अब वह बाहर आकर नष्ट हो जाता है ।

यह बड़ी भारी बुराई है । इससे छुटकारा पाने के उपाय की चर्चा हम आगे के अध्याय में करेंगे ।

नता देखने में नहीं आती—वे सब-के-सब पीले पड़ते जाते हैं। उनके होठों पर पपड़ियाँ जमने लगती हैं, सिर के बाल झड़ने लगते हैं, बदन का चमड़ा ढीला पड़ने लगता है, चेहरा उतरा जाता है, और उनकी चाल-ढाल में आलस और हृदय-भग्नता की झलक दृष्टिगोचर होने लगती है। ये वही युवक हैं, जो आगे क्षयी-रोग से पीड़ित होकर भुवाली, अलमोड़े की हवा खाने जाते हैं तथा अपने घरवालों को बहुतेरा त्रास पहुँचाते हैं।

पर क्या ये अपने आपको जबरदस्ती बिगाड़ते हैं? ऐसा तो कोई प्राणी न होगा, जो जान-बूझकर अपने को काल के गाल में डाले! अवस्था थोड़ी-सी भी विषम हो चलती है, तो मनुष्य वहीं से अपने को मोड़ता और बचाता है! फिर इस पर कैसे विश्वास हो कि ये युवक आँख मूँदकर सीधे रसातल को जाते हैं?

बात ऐसी नहीं है। वे युवक बहुत ही थोड़े हैं, जो अँधाधुंध, छोर से अंत तक, इंद्रिय-तृप्ति के पीछे आत्महत्या करने को उतारू होते हैं। यदि ऐसे हैं भी, तो उनके लिये मुझे यहाँ कुछ कहना व्यर्थ है; क्योंकि वे उन पतंगों की भाँति हैं, जिनके पर उग आते हैं, और जो निश्चय ही अपने को नष्ट कर डालते हैं। उनका दोष, उनका पाप उन्हीं के

स्वप्नदोष और उसका निवारण

शुक्र (वीर्य) का भीतर-ही-भीतर घुलना स्वयं मनुष्य की अपनी भलाई के लिये है। उसका बाहरी उपयोग संतानोत्पत्ति में हो सकता है। पर यह स्पष्ट है कि १८ वर्ष के युवक से और संतानोत्पत्ति से कोई संबंध नहीं। बेचारे की न अभी हड्डी बनी है, न अंग भरा है, न शिक्षा समाप्त हुई है, और न जीविका का ही कोई सहारा हुआ है। समाज और प्रकृति दोनों ही उसे इस कर्म के अयोग्य ठहराते हैं।

पर वह बेचारा बड़ी द्विविधा में पड़ता है। एक ओर गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करने की यह अयोग्यता, दूसरी ओर रात को डरकर चारपाई पर जाना और फिर भी शुक्र से प्रातःकाल वस्त्र गीले! अभिप्राय क्या है? युवक की यह दुर्दशा क्यों!

इस आपत्ति के कारण स्कूल-कॉलेजों में जाकर देखिए। १७ वर्ष के ऊपर किसी कुमार के मुख पर प्रस-

ता देखने में नहीं आती—वे सब-के-सब पीले पड़ते जाते । उनके होठों पर पपड़ियाँ जमने लगती हैं, तर के बाल झड़ने लगते हैं, बदन का चमड़ा ढीला पड़ने गता है, चेहरा उतरा जाता है, और उनकी चाल-ढाल में गलस और हृदय-भग्नता की झलक दृष्टिगोचर होने लगती । वे यही युवक हैं, जो आगे क्षयी-रोग से पीड़ित होकर गुवाली, अलमोड़े की हवा खाने जाते हैं तथा अपने घरवालों को बहुतेरा त्रास पहुँचाते हैं।

पर क्या ये अपने आपको जबरदस्ती बिगाड़ते हैं? ऐसा तो कोई प्राणी न होगा, जो जान-बूझकर अपने को काल के गाल में डाले! अवस्था थोड़ी-सी भी विषम हो चलती है, तो मनुष्य वहीं से अपने को मोड़ता और बचाता है! फिर इस पर कैसे विश्वास हो कि ये युवक आँख मूँदकर सीधे रसातल को जाते हैं?

बात ऐसी नहीं है। वे युवक बहुत ही थोड़े हैं, जो अंधा-धुंध, छोर से अंत तक, इंद्रिय-तृप्ति के पीछे आत्महत्या करने को उतारू होते हैं। यदि ऐसे हैं भी, तो उनके लिये मुझे यहाँ कुछ कहना व्यर्थ है; क्योंकि वे उन भाँति हैं, जिनके पर उग आते हैं, और जो को नष्ट कर डालते हैं। उनका

सिर है। शास्त्र भी उनमें हाथ धो बैठता है—"यस्य
स्वयं प्रज्ञा, शास्त्रं तस्य करोति किं" अर्थात् जिसे
बुद्धि नहीं है, उसका भला शास्त्र क्या कर सकता है! ऐ
महात्माओं को दूर ही से प्रणाम कर हम इस समय उन
युवकों की चर्चा चलाते हैं, जो रात-दिन स्वप्न-दोष से बचने
की चिंता तो करते हैं; पर उससे पीछा नहीं छुड़ा पाते।
जब ही दो-चार दिन उनका शरीर अच्छा होने लगता है,
काम में हाथ लगाने का उनमें साहस आता है, बस, यह
प्रकट होकर उनके सारे उमंग और उत्साह को छिन्न-भिन्न
कर डालता है। परिश्रम और उद्योग आदि गुण के आश्रय,
जिन पर युवकों की आत्मोन्नति निर्भर है, संसार में
अपना सिर नहीं उठा पाते। उनकी आँखों के सामने निराशा
का अंधकार छा जाता है, और वे बहुत घबराते तथा व्याकुल
होते हैं।

खेद का विषय तो यह है कि वे इसमें अपने को एकदम
निर्दोष समझते हैं, और अपने दिलमें बराबर यही कहते रहते
हैं कि हम अपने जानते कोई ऐसा काम नहीं करते कि इस
...ह के भागी हों। लोग कैसे-कैसे पाप और दुराचार करते
... फिर भी वे हट्टे-कट्टे, छाती निकाले घूमते फिरते हैं।
...ही पर हाथ-पैर सिकोड़े

लिया करते हैं; उस पर भी हम बराबर नाड़ी टटोला
ते हैं, और दिनोंदिन सर्व प्रकार छीजते जाते हैं। इससे
अच्छा था कि छूटकर खूब खेलते और मौज उड़ाते।
गुनाह बे-लज्जत से क्या फ़ायदा ? न दुनिया देखी,
नेकी और तंदुरुस्ती ही हासिल हुई।

ऐसे उद्धत विचार की भ्रांति में पड़कर प्रायः लोग शैतान
भी बाजी बदने को तैयार हो जाते हैं। वे कहते हैं—
तना परहेज होने पर भी जब शुक्र की रक्षा नहीं हो पाती,
वह स्वप्नदोष इत्यादि में निकल ही जाता है, तो उससे
षय-भोग की ही सिद्धि क्यों न की जाय ? ऐसे भी वह नष्ट
गा और वैसे भी ! चलो आनंद ही लूटें !"

साधारण मनुष्य के लिये इस प्रकार तर्क या दलील करना
लकुल ठीक है। पर इस तर्क में उससे एक बड़ी भारी भूल
ती है, और वह पीछे से अपनी अज्ञानता के लिये बहुत
ानक दुःख उठाता है। वह ग़रीब नहीं जानता कि पूरी
ह से आरोग्य नवयुक के वास्ते भी समय-समय पर निद्रा
शुक्र का स्खलन होना एक नियम की बात है। हम ऊपर
ह आए हैं कि वह पेड़ू के पास एक क्रिया का फल है। वह
प्रकार होता है कि पेड़ू-प्रदेश (Abdomen) ...
ान पर कुछ जीवाणु (...

आहार है एक प्रकार का द्रव्य, जिसे 'एल्बुमेन' (Alb-
men) कहते हैं। यह द्रव्य थोड़ा-थोड़ा रुधिर से, ए
विशेष क्रिया के द्वारा, बनकर मूत्राशय के पास एक छो
(Seminal vesicle) में संचित होता है। युवक
शरीर में जैसे-जैसे बल आने लगता है, वैसे-वैसे जीवाणु
का यह शाप पदार्थ—एल्बुमेन—ज़रूरत से अधिक बनने
लगता है। यही बचा हुआ एल्बुमेन बूँद-बूँद इकट्ठा होक
जब १५–२० दिन में बढ़कर नाभी के नीचे तनने लगता है,
तो नवयुवक का चित्त अस्थिर होने लगता है, और उसे तरह-
तरह की अपवित्र भावनाएँ सताने लगती हैं।

क्या आपने सुविख्यात चित्रकार रविवर्मा का वह चित्र
नहीं देखा, जिसमें उसने "ऊपा का स्वप्न" नामी मनोहर
दृश्य चित्रित किया है? ऊपा एक युवती थी। उसका विवाह
श्रीकृष्ण के पोते अनिरुद्ध से होनेवाला था। उसने अनिरुद्ध
को कभी देखा न था; पर उसका वर्णन बहुत सुना था। एक
रात को जब वह सोई, तो स्वप्न में क्या देखती है कि अनि-
रुद्ध उसके बहुत समीप आकर, उसे निहारने के लिये, सिरहाने
मुख पर झुके जाते हैं! इधर स्वप्न में उसका शरीर उस कल्पित
... से पुलकित और रोमांचित हो रहा था। इसका ...
क्या था? केवल शरी...

किशोरावस्था
वृक्क
धमनी
नाभि
मांस
वसा
त्वचा
संधि
बाल
उपस्थ
मूत्राशय
शुक्र प्रनाली
शुक्राशय
अंड
अंडकोष
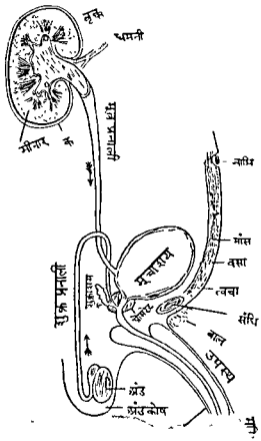
अब आप समझ सकते हैं कि पेडू के निकट के उस कोष का उभरा हुआ एल्ब्युमेन यदि बाहर ढल जाता है, तो उसमें कोई वैसा भय नहीं है। यह तो एक नैसर्गिक क्रिया है। आँख से जैसे कीचड़ और कान से जैसे मैल निकलता है, वैसे ही इसे भी समझिए। इससे डरकर वैद्य-हकीम की फेर में पड़ना और इश्तिहारी दावा खाना निरी मूर्खता है!

हाँ, यदि स्वप्नदोष बहुत जल्द-जल्द होने लगे, तो उसका कारण ढूँढ़ना चाहिए; क्योंकि ऊपर बताए नियम के अतिरिक्त और कई प्रकार से वीर्य का स्खलन हो जाता है। उनका भी अवसर पाकर उल्लेख होगा। पर यहाँ हम इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि हमें, बार-बार के स्वप्नदोष से तंग होकर, कभी भूलकर भी यह न मान लेना चाहिए कि रात में सोते-सोते वीर्य का नष्ट होना और अपनी इच्छा से उसे निकालना एक ही बात है।

इसका भेद बहुत सूक्ष्म नहीं है। एक गँवार भी बतला सकता है कि स्वप्नदोष की अपेक्षा हस्त-क्रिया, पर-स्त्री-गमन या और दूसरे व्यभिचार, जिनके द्वारा वीर्य शरीर से धक्का देकर निकाला जाता है, दशगुणा अधिक हानिकारक हैं; क्योंकि स्वप्नदोष से केवल संचित एल्ब्युमेन का प्रवाह हो जाता है; पर व्यभिचार द्वारा शरीर-भर का लहू मथा जाता है.

जो वीर्य तैयार होता है, 'वह

दोनों को समान समझने की जो गड़बड़ी करते हैं, वे एक ओर अपनी पाप-बुद्धि के बहकावे में अपनी पीठ अपने हाथ ठोकते हैं, और दूसरी ओर अपने जीवन को स्वाहा करते जाते हैं! ग़ज़ब तो यह है कि इस पाप के परिणाम से जब तक उनका मस्तिष्क नहीं बिगड़ता और वे पागल नहीं होते—जब तक प्रमेह, उपदंश आदि घृणित रोगों से उनका शरीर जर्जर नहीं होता और उनके रुधिर में विकार आने के कारण उन्हें रौरव नरक का सुख अनुभव नहीं होता, तब तक उन्हें संदेह तक नहीं होता कि हम क्या कर रहे हैं!

ऊपर का भ्रम एक और कारण से होता है। गली-कूचेवाली छोटी जातियों से हमारे बाबू लोग यह सुन लेते हैं कि "१८-१६ वर्ष के बाद शरीर से वीर्य का निकलना अच्छा होता है। बहता पानी जैसे स्वच्छ होता है, वैसे ही बहता वीर्य युवक को एक खासा पट्ठा बना देता है। वीर्य को रोकने से दिमाग़ में गरमी चढ़ जाती है।"

ऐसी ही निर्मूल ऊटपटाँग बातें उनके कानों में पड़ती हैं, और फिर क्या 'कौता और ले उड़े' की कहावत चरितार्थ होती है। नए बाबू जब तक अपने अंजर-पंजर ढीले नहीं कर डालते, तब तक वे किसी की भी नहीं मानते! भला जिस पदार्थ से हमारे सब प्रकार के सुख और कल्याण

की संभावना है, उसे खोकर हम क्या फल पायेंगे ?

संसार में मनुष्यों पर जब भीर पड़ी है, बड़ी-बड़ी लड़ाइयों से जब उन्हें सामना करना पड़ा है, अपने बल और पौरुष की जब उन्हें परीक्षा देनी पड़ी है, बड़े-बड़े वैज्ञानिक और मनस्वी आविष्कारों ने जब मानवजाति के लिये कठिन प्रयास किया है, तो उस समय, एक निमेष के लिये भी, उन्होंने विषय-भोग का ध्यान मन में न आने दिया है ! इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस कर्म से अलग ही रहकर मनुष्य बड़े-बड़े काम साध सकता है ; अन्यथा प्रकृति पर उसकी जीत या संसार में उसकी प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

यह बात भी निर्विवाद है कि एक नियत काल तक— अर्थात् कम-से-कम ३० वर्ष तक—मनुष्य विषय-भोग से किनारे रहता हुआ अपना स्वास्थ्य बनाए रख सकता है। इसके परचात्, कुछ डॉक्टरों के मत से उसके जीवन में, संयम करने से, सुस्ती और उदासी आने लगेगी; पर दूसरे डॉक्टर दावे से कहते हैं कि ऐसे मनुष्य की पूरी आयु होगी, और उसे अपने कर्तव्य-पालन में अद्भुत सफलता और शांति प्राप्त होगी। विज्ञान की यह बात हमें शिरोधार्य होनी चाहिए।

अब हम यह देखना चाहते हैं कि नियम रहकर मनुष्य कहाँ तक सुखी और प्रसन्न रह है—विचार और सुव्यवस्था से अपने जीवन आनंदमय बनाने में उसे कितनी सफलता संकती है।

पुराने लोगों के मत के अनुसार हम जन्म से ही शोक और दुःख से परे हैं, हम सच्चिदानंदरूप हैं, हम सब प्रकार मुक्त और स्वतंत्र हैं—

अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानंदरूपोहं नित्यमुक्तस्वरूपवान् ॥

नए नीतिकारों ने भी इस जीवन को सुखमय प्रमाणित किया है। There is joy in living, life is worth living आदि वाक्यों में भी यही उपदेश है। कवि ने क्या ही अच्छा कहा है—

कहो न प्यारे मुझसे ऐसा—
"झूठा है यह सब संसार,
थोथा झगड़ा, जी का रगड़ा,
केवल दुख का हेतु अपार।"
जगत है सच्चा, तनिक न कच्चा,
समझो बच्चा इसका भेद,

पीओ-खाओ, सब सुख पाओ,
कभी न लाओ मन में खेद।
[जगत्-सचाई-सार

कहाँ तो हमारा यह विश्वास है, और कहाँ हम देखते हैं कि कितने ही नवयुवक निष्कपट भाव से अपना जीवन सुधारने का प्रयत्न करते हुए भी असफल होते हैं। प्रकटरूप उनमें कोई कुव्यसन नहीं है; आहार, निद्रा इत्यादि भी क्रमानुसार ही होता है। पर तब भी उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। विशेष कर स्वप्नदोष की उन्हें बड़ी शिकायत रहती है। वे उसे हजार रोकना चाहते हैं, पर वह नहीं रुकता। कभी-कभी तो उसके भय से वे चारपाई पर बैठे-बैठे रात काट देते हैं; क्योंकि जहाँ सोए कि वीर्य नष्ट हुआ! वे फिर किसी योग्य नहीं रह जाते। उनसे व्यायाम नहीं होता। शरीर में सब प्रकार की व्याधियाँ घर कर लेती हैं। उनका किसी काम में जी नहीं लगता और जीना व्यर्थ हो जाता है। ऐसे आदमियों के लिये क्या कहा जा सकता है? वे क्या अपने अपराध से दुःखी हैं?

यों कहने-सुनने में चाहे जो कुछ हो; पर अच्छी तरह विचार करने से मालूम होता है कि इसमें नवयुवकों का ही दोष है; क्योंकि प्रत्यक्षरूप पाप से दूर रहना एक बात है,

बड़ी दुर्गति होती है; क्योंकि वे कहीं के भी नहीं रहते। पाप-कर्म करने से मनुष्य की प्राय: जो अवस्था होती है, क़रीब-क़रीब वही मन में पाप का ध्यान लाने से भी होती है; क्योंकि शरीर-विज्ञान के अनुसार किसी के रूप या हाव-भाव की कल्पना से सुख मिलते ही शरीर में वीर्य बनने लगता है, और जब वह बन चुकता है, तो उसे बिना निकाले चैन नहीं पड़ता ! हाँ, उसका एक अंश शरीर ही में सुखा दिया जा सकता है। पर उसकी भी हद है। इसलिये हँसी-ठठोली, गंदे गाने इत्यादि से भी बड़ी हानि पहुँचती है। कुछ लोग कहा करते हैं कि युवक के लिये दूसरों से गले लगने, अश्लील शब्द कहने या मुख चूमने में कोई डर नहीं है। ऐसे लोगों को मनुष्य-स्वभाव का बहुत अधूरा ज्ञान होता है, और उन पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता। वे नहीं जानते कि साधारण तौर पर शरीर में पहले से कहीं वीर्य बना-बनाया नहीं रहता। भोग-वासना की दाह से ही वह रुधिर से छन-छनकर बनने लगता है, और फिर वह किसी-न-किसी तरह निकल जाता है।

सभी तो दोस्तों के बीच बुरे-बुरे संकेत और बढ़-बढ़कर बातों में आक[illegible] देवाले लड़कों को बहुत

वयस के अल्हड़ नवयुवकों की संगति में रहना—ये सब उसकी कल्पना को उत्तेजित कर देते हैं, उसके रुधिर में हरारत आ जाती है, और वह अपने वश के बाहर हो जाता है। इसीलिये इस अवस्था में सरल रहन-सहन तथा भोग-विलास में लिप्त होने का अवसर न मिलना ब्रह्मचर्य पालन में बहुत सहायक होता है, या यों कहिए कि इस उमर में सुख-भोग से थोड़ी-बहुत विरक्ति लाभदायक होती है।

मोटा खाना-पहनना, केवल शौच और स्वच्छता का ध्यान रखकर जहाँ पाना उठना, बैठना और सोना, बाल न बनाना, इत्र-फुलेल न छूना, नाच-तमाशे से अलग रहना बहुत उपकारी है। मनु ने बहुत दूर की सोची थी जो लिखा था—

वर्जयेत् मधुमांसं च गंधमाल्यं रसांस्त्रियः इत्यादि

अर्थात् माला, फूल, सुगंधि, अधिक रसीली और मीठी चीज़ों का सेवन ब्रह्मचारी को निषिद्ध है। यदि हमारे नवयुवकों को किसी तरह के ऐश-आराम का चसका न लगे, तो वे कभी अपने पथ से भ्रष्ट न हों, और उन्हें आत्म-संयम के पालन में अधिक कठिनाई भी अनुभव न हो।

मन विचलित हो जाता है, तो उस समय वीर्य बनाने पैलियाँ ढीली पड़ जाती हैं, और उनसे अधिकाधिक स होने लगता है। पर इसका उपाय भी वही सादा रहन-स और भोग-विलास की ओर से विरक्ति ही हो सकती है ऐसे अवसर पर जब स्वप्नदोष बढ़ जाय, तो सम चाहिए कि विशेष सावधानी से खुली हवा में व्याया इत्यादि करने, शरीर और वस्त्र स्वच्छ रखने और मन पवित्रता के भाव लाने की आवश्यकता है। इन साधनों वह घुला हुआ वीर्य शरीर में दुबारा हल हो जाता है।

किसी-किसी आदमी में इस तरह पसीजे हुए वी को भीतर-ही-भीतर हल कर लेने की बहुत शक्ति होती है और उन्हें दो-दो, ढाई-ढाई महीने तक स्वप्नदोष नहीं होता। यह बात सबके लिये भले ही असंभव हो; पर यत्न करने पर प्रत्येक नवयुवक में यह शक्ति कुछ-न-कुछ बढ़ सकती है। इसमें सबसे अधिक सहायता अच्छी संगत से मिलती है। यदि एकाएक अपने में आप गंभीरता और सद्विचार लाना चाहते हैं, तो जितनी घड़ी हो अपना जीवन एक या दो ऐसे मित्रों के साथ व्यतीत कीजिए, जिनके लिये आपके हृदय में बहुत मान और आदर हो, और जो सब तरह आपसे चरित्र और आचरण में श्रेष्ठ हों। खाना, पीना, काम करना, घूमना और

ना उन्हीं के साथ-साथ रखिए या यों कहिए कि उनके
वन-क्रम के साथ अपना जीवन-क्रम मिला लीजिए। इसके
तिरिक्त, अपने काम-धाम में कुछ परिवर्तन कर दीजिए।
ो काम आज तक करते आए हों, उसे दो-चार दिन के
लिये बदल डालिए और इसका ध्यान रखिए कि अकेले
दिमाग़ के ही काम में आप न फँसे रह जायँ। शारीरिक परि-
श्रम और लिखने-पढ़ने तथा सोचने के काम में अपना समय
बराबर-बराबर बाँटना चाहिए; नहीं तो इसका फल अशुभ
होता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि जो केवल शरीर से ही मिहनत
करते हैं—जैसे किसान, बढ़ई, लुहार—वे उन लोगों से बहुत
कम विषयी होते हैं, जो केवल मानसिक परिश्रम करते हैं, और
उन्हें काम-पीड़ा उतना नहीं सताती। ग्रामवास करनेवाले,
जो प्रातःकाल ही शौच इत्यादि के लिये दूर जंगल में जाते हैं,
नदी की धारा वा तालाब में नहाते हैं, खुले मैदान वा खेत-
खलिहान में काम करते हैं, दोपहर वा रात को विश्राम और
निद्रा के लिये भी वृक्ष और लताओं की छाँह का आश्रय लेते
हैं, बड़े मजे में रहते हैं। सब घड़ी साफ़ बहती हवा के स्पर्श,
शस्य और वनस्पतियों की हरियाली, पक्षियों के ..
पुष्पों की महक के आनंद में

बैठा-बैठा सुग्ध भी रहता है, और बिना अपने सत्त्वादि नाश किए ही कालक्षेप कर लेता है। इसलिये जब स इत्यादि से शरीर में क्षीणता आ जाय, तो कुछ दिन के शहर से दूर गाँव में भी किसी पुण्य-तीर्थ में चला ज यह न हो सके तो, दो-चार कोस पर कहीं यात्रा में नि जाना तथा घर के समीप ही कोई नदी या स्रोत में स्नान का नियम बहुत हितकर होता है। रात को एक चौड़े में पाक बिस्तर पर स्तुति-पाठ इत्यादि करके म को इष्टदेव के हाथ सौंपकर आवश्यकता-भर गाढ़ी नीं सोना, दिन को भी थोड़ी देर के लिये शरीर को पूर्ण विश्रा देना, अच्छा साहित्य या मनोरंजन के योग्य गल्प और भ्रमण वृत्तांत इत्यादि पढ़ना, कुछ-न-कुछ उपयोगी काम करते रहना, सुबह और शाम दोनों बार—संभव हो तो—ऋतु के अनु सार नहाना और कपड़े बदलना, वयोवृद्ध लोगों का सत्संग करना तथा अपने अनुकूल कोई काम ले लेना और उसकी समाप्ति में यत्नवान् होना—ये सब देह के बल-वीर्य को देह ही में रखने के साधन हैं। प्रसिद्ध डॉक्टर स्टॉल (Stall), जिनके बराबर नवयुवकों का संसार में आज तक कोई दूसरा हितैषी नहीं हुआ, अपनी 'What a young man ought to know'-नामक पुस्तक में स्वप्नदोष को रोकने के निमित्त

अपनी शिक्षा का सार-स्वरूप कुछ नियम देते हैं। उसका आशय नीचे दिया जाता है—

१. दिन में एक बार ठंडे जल से अवश्य स्नान करो।

२. रात को व्यालू देर से न करो। शाम को खाने के उपरांत घूमना-फिरना और सोने के पूर्व कम-से-कम ३ घंटे का अंतर देना, जिसमें पेट हलका हो जाय, जरूरी है। खाकर तुरंत ही सो जाना बहुत बुरा है।

३. कोई पदार्थ अधिक न खाओ।

४. तंबाकू या मदिरा का सेवन करना एकदम छोड़ दो।

५. चाय और क़हवा का व्यवहार, जहाँ तक हो, कम करो।

६. कोई बहुत तप्त चीज—जैसे कि बहुत गरम दूध या रस—न पीओ, इससे वीर्य पतला होता है।

७. निरामिष भोजन करो; मांस-मछली न छुओ।

८. खाने-पीने का समय बँधा हुआ रक्खो। जो पाना, उसे खा लेना बुरा है। बिना भूख लगे न खाओ

९. खाने में जल्दी न करो; खूब

१०. दोनों समय पाखाने जाया

पेट सदा . .

के पास ही बद थैली होती है, जिसमें जीवाणुम
एल्ब्युमेन संचय होता है। अतएव मूत्राशय के
उस थैली पर ज़ोर पहुँचता है, और स्वप्नदोष
डर रहता है।

१२. शांत-स्थान में और अकेले चारपाई पर स
सोने के पहले इधर-उधर की न सोचो; झटपट सो
जागने पर तुरंत चारपाई त्याग दो। आलस्य से लेटे न

१३. रात को अधिक जागो नहीं। जल्दी समय प
जाओ, और निश्चित होकर जितना सो सको, सोओ।

१४. सोने के कमरे को बंद न करो। उसमें हवा अ
आने दो।

१५. प्रति दिन दो घंटे खुली हवा में जरूर कसरत कर

१६. अधिक थको नहीं। दौड़-धूप वा खेल-कूद में बहु
थकावट न आने पावे।

१७. धाम में बैठना वा लेटना अथवा आग तापना बुरा है।

१८. अपने पैर और तलवों को गीला वा ठंढा न होने दो।

१९. सदा प्रसन्न और हँसमुख रहो।

२०. ईश्वर में भरोसा रक्खो; क्योंकि "न हि कल्याण-
कृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति"

संक्षेप में यही नवयुवकों की स्वास्थ्य-रक्षा के नियम हैं। इनमें एक-दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं। स्नान का साधारण क़ायदा शरीर पर जल छोड़ना होता है, पर उससे लाभ कम है। शरीर जब भीग जाय, तो तौलिए या कपड़े से सारा शरीर खूब रगड़ना चाहिए, और यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि स्नान के बाद ही थोड़ी कसरत करना या एक-आध मील घूमना बड़ा स्वास्थ्यप्रद है।

बहुत स्थानों पर रात में १०-११ बजे खाने का नियम है। लड़के पढ़ने-लिखने का काम समाप्त करके रसोई-घर में जाते हैं, और आकंठ खाकर सो रहते हैं। इस रिवाज को, जहाँ तक हो, जल्द तोड़ना चाहिए। जैन-धर्मावलंबियों का सूर्यास्त के पूर्व ब्यालू करना अत्यंत युक्तिसंगत और स्वास्थ्य-कर है।

दिन में दो बार, चाहे पाख़ाना मालूम हो या न मालूम हो, ज़रूर टट्टी जाना चाहिए। नियत समय पर जाने से कुद-
[illegible]

ों में कोई कच्ची उमर का लड़का दूसरों से खिलवाड़ न करने
। एकांत में अपने से कम उमर के वा रूपवान् लड़के से
कोई परदे की बात न छेड़नी चाहिए। ऐसा करने से कामा-
होने का भय रहता है, और उससे लाभ के बदले उलटी
नि होती है।

जिनकी पूर्ण अवस्था नहीं हुई है, उनके लिये विशेष
रना-धजना, कपड़े-लत्ते, पान, एसेंस वा छल्ले-अँगूठी
र रिस्टवॉच से अपने को सँवारना काल के
ान है। काशी, मथुरा, दिल्ली और लखनऊ में कितने ही
ठ, रईस और नवाब के लड़के दिन-भर के निठल्लेपन के
द संध्या को घर से बन-ठनकर बाग़ की सैर करने को
कलते हैं। वहाँ दो-चार तो फूलों के गहने भी पहनते देखे
ए हैं, और बाक़ी वहाँ बड़ी रात तक तवायफ़ों से मुजरे
नते हैं। जिस जाति या देश के बालकों में इतनी सुकुमारता
ौर विलास-प्रियता आ गई हो, उसमें शौर्य, साहस और
रुष कहाँ ठहर सकते हैं! उस जाति को संसार के इतिहास
मिटा ही हुआ समझिए!

यौवनकाल के जितने भय-विघ्न ऊपर बताए गए हैं, उनमें
दिन-डूबे अपने से बड़े लड़कों के साथ घूमना भी एक है।
ाल में जब से स्कूल में हॉकी-फुटबॉल खेलने की रीति निकली

प्रातःकाल जागने पर बहुत लोग आलस से बिछौने
पकड़ा करते हैं। इस समय रात-भर के विश्राम के
शरीर में बहुत बल आ जाता है। समझदार लड़के उस
को अपनी उस दिन की पूँजी समझकर संसार-यात्रा
के लिये निकलते हैं। आँख खुलते ही वे ईश्वर को स्वर
साथ पुकारते हैं—

"लोकेश चैतन्यमयाधिदेव श्रीकांत विष्णो भवदाज्ञयैव।
प्रातःसमुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये।"

पर हतभाग्य बालक प्रातःकाल के क्षणिक उल्लास और
वेग में आकर अपने को सँभाल नहीं सकते। वे अनेक प्रकार
खयाली दूषित चित्र देखने लगते हैं, और अपनी तबियत
व खराब कर डालते हैं। ऐसे समय पर जननेंद्रिय को
ी तरह छूना, टटोलना वा उससे खिलवाड़ करना क्या
ानो अपने हाथों अपने नरम हृदय में छुरी चुभोना और
गरम ताजे लहू में हाथ डुबो-डुबोकर क्रीड़ा करना है।
को हरगिज-हरगिज ऐसे कठिन समय में इंद्रिय-स्पर्श
ा चाहिए; क्योंकि ऐसा करते ही वीर्य का
, और मन में फिर वही चंचलता आ जाती है।
ाड़ करना पाप का सीधा द्वार है।
ई पर अकेले सोने

है कि

पाली में कोई कभी उमर का लड़का दूसरों से खिलवाड़ न करने पावे। एकांत में अपने से कम उमर के या रूपवान् लड़के से भी कोई परदे की बात न छेड़नी चाहिए। ऐसा करने से कामातुर होने का भय रहता है, और उससे लाभ के बदले उलटी हानि होती है।

जिनकी पूर्ण अवस्था नहीं हुई है, उनके लिये विशेष सजना-धजना, कपड़े-लत्ते, पान, एसेंस या छल्ले-अँगूठी और रिस्टवॉच से अपने को सँवारना काल के समान है। काशी, मथुरा, दिल्ली और लखनऊ में कितने ही सेठ, रईस और नवाब के लड़के दिन-भर के निठल्लेपन के बाद संध्या को घर से बन-ठनकर बाग की सैर करने को निकलते हैं। वहाँ दो-चार सौ फूलों के गहने भी पहनते देखे गए हैं, और बाकी बड़ी बड़ी रात तक तवायफों से मुजरे सुनते हैं। जिस जाति या देश के बालकों में इतनी सुकुमारता और विलास-प्रियता आ गई हो, उसमें शौर्य, साहस और पौरुष कहाँ ठहर सकते हैं! उस जाति को संसार के इतिहास से मिटा ही हुआ समझिए!

यौवनकाल के जितने भय-विघ्न ऊपर बताए गए हैं, उनमें दिन-दूने अपने से बड़े लड़कों के साथ घूमना भी एक है। हाल में जब से स्कूल में बोर्डिंग-हाउस में रहने की रीति निकली

है, उसमें उचित निरीक्षण करने से लाभ तो बहुत
है; पर लौटती बेर राह में आवारा लड़कों के साथ गाली-ग
करते और बीड़ी-चुरुट पीते घर आना बहुत भयंकर
दिखलाता है। सैकड़े बीस लड़के पाप-कर्म की इसी तरह दी
लेते हैं।

कहीं भी अधिक निर्जन स्थान में रहना ऐसे लड़कों के लिये,
जिनका चरित्र अभी नहीं बना है, बुरा होता है। बहुत काल
तक समाज-संगत की देखादेखी और अपयश होने के डर से
ही युवक आचार का पालन करते हैं। अकेला रहना मानो
बंधेज से मुक्त रहना है, और इसीलिये ऐसी स्थिति में ल
बिगड़ जाते हैं। जहाँ तक हो एकांत-वास न करना चाहिए

भोजन इत्यादि में बहुत मसालेदार तरकारियाँ, अचार,
मुरब्बे और चटनियाँ तथा घी से तर हलवा, मालपुआ और
मिठाई खाना पवित्र जीवन के विरुद्ध है। मेनका-नामक अप्सरा
का उस वृक्ष में, जहाँ से विश्वामित्र अपने खाने के लिये छाल
ले जाया करते थे, मक्खन लपेटना और कुछ दिनों के बा
ऋषि का पतन होना एक शिक्षाप्रद कथा है। बहुत गरम
अमीरी भोजन करना अपने शत्रु के हाथ में हथियार दे देना है।
अंत में लड़कों को यह समझाना कि जन्म-भर अपनी इंद्रियों
. . करना ही पुण्य है तथा काम-वासना . . .

समय पाकर यह संकेत भी अवश्य करना चाहिए कि हमें प्रकृति ने इच्छा-वासनायुक्त शरीर इसलिये नहीं दिया है कि सदा हम. उससे लड़ने-भिड़ने ही में अपना सारा समय और बल लगा दें।

पूरी अवस्था होने पर ठाँव-कुठाँव और समय-कुसमय देखकर इच्छाओं के अनुकूल चलने में ही बुद्धिमत्ता और सुख की आशा हो सकती है। अवसर-अवसर पर सुख-भोग में प्रवृत्ति और फिर निवृत्ति ईश्वरी नियम है। जो व्यक्ति सदा उपवास ही किया करता है या जन्म से मरण तक इंद्रियों का द्वार रुद्ध रखता है, उससे संसार का कोई हित नहीं हो सकता। उचित अवस्था आने पर उपयुक्त लड़की या लड़के से विवाह-बंधन और पारिवारिक जीवन का आनंद लेना प्रत्येक प्राणी का अधिकार है। हमें नवयुवकों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि जिसमें वे विवाह के बाद गार्हस्थ्य-जीवन के कर्तव्य का पालन कर सकें—युवावस्था आते ही उन्हें ऐसी चेतावनी देनी चाहिए कि जिसमें वे बल, बुद्धि, सुंदरता और व्यावहारिक ज्ञान इत्यादि से अपनी बहू को प्रसन्न रखने और उसका निर्वाह करने के योग्य बन सकें।

युवक को आचार-भ्रष्ट होने से रोकने के जितने साधन हैं,

उनमें यह विचार उच्च स्थान रखता है कि हमें थोड़े ही दिन बाद गृहस्थी चलानी है। साधु-फ़क़ीर होना यह नहीं है कि हम गाँजे-भाँग से अपने शुक्र को सुखा देंगे या हस्त-मैथुन इत्यादि करके उसको खराब कर डालेंगे। यह शक्ति हमारे मार्ग में काँटा नहीं है, जिसे उखाड़कर फेंक देने में हमारी बहादुरी है। इससे हमें संतानोत्पत्ति करनी है—सुंदर, सुखी और नीरोग बच्चे, जो हमारे बुढ़ापे में हमारा सहारा होंगे, जिनके ऊपर अपना काम सौंपकर हम इस संसार से, जीवन सफल समझकर, प्रस्थान करेंगे।

जब मनुष्य अपने लड़कों को उचित सलाह दे चुकें, तो उनके ऊपर विश्वास रक्खें। उनसे बराबर सशंकित रहना या बहुत टोकना और छेड़ना अपनी कमज़ोरी दिखलाना है। जो कुछ भी सच्चा सुधार होता है, भीतर से होता है। बल-प्रयोग करके हम युवकों को सदाचारी नहीं बना सकते। लड़कों को डाटते और रोकते समय हमें अपनी युवावस्था का स्मरण रखना चाहिए। क्या उस पुरुष के प्रति हमारा व्यवहार खोटा होता था, जो हमारे ऊपर पूरा विश्वास रखता था? जो मार्ग दिखाकर हमें अपने आप पर छोड़ देता था, उसकी ओर हमारी और भी श्रद्धा-भक्ति होती थी। अवकाश पाकर सद्वृत्तियाँ कुवृत्तियों को आप ही दबा देती हैं। बालकों को

उनका हित-अहित बतलाकर हट जाना और उन्हें पूरी स्वतंत्रता देना—इससे बढ़कर शिक्षक का कोई दूसरा महान् कार्य नहीं होता। बालक का जैसा सच्चा संस्कार होगा, वैसी ही उसकी गति होगी। बस, इसी पर हमको संतोष करना चाहिए। एक अँगरेज़ कवि ने क्या ही ठीक कहा है—

"We preach too much and dwell too long
On sin and sorrow and trouble.
We help them to live by the thought we give,
Their spite and might to redouble.
The earth is fair and its people are kind,
If we once look to their kindness.
If the world looks evil and its denizens bad,
It is our own souls' blindness.
If we think of the good that the world contains
And try our best to add to it,
The evil will die of neglect by and by;
It is the very best way to undo it."

युवकों का रोगकष्ट

प्रत्येक नवयुवक को इस बात की खबर र
कि उसका कौन-सा अंग जन्म से ही दुर्बल है।
पिता को फेफड़े, मस्तिष्क, पेट या त्वचा का को
तो उसे खूब सतर्क होना चाहिए कि यह रोग उस
में न उभरने पावे। इसके लिये खान-पान, रहन-
उसे विशेष परहेज़ की ज़रूरत होगी। इसी सिल
उसे अपने मा-बाप से यह भी पूछना चाहिए कि
ँ उसे अधिकतर कौन-सा रोग हुआ करता था
ोगों की प्रवृत्ति उसमें पहले से मौजूद है, इसलिये
बातों का दूसरों पर नाम-मात्र का भी असर नहीं होता,
से, संभव है, असहनीय पीड़ा उपस्थित हो सकती है। जिस
बाप के यों ही दम फूला

के साथ पीछा छुड़ाना चाहिए। कितने ही परिवार के लिये तरबूज, कटहल, अनानास, भुट्टा इत्यादि विष का काम करते हैं। उस घर के किसी आदमी को एक क़ाश तरबूज या अनानास खिला दीजिए, फ़ौरन् बुखार आयगा। यह उनके शरीर की बनावट की विचित्रता है। यदि युवक एक-एक करके यत्न-पूर्वक अपने शरीर की सभी विचित्र प्रवृत्तियों को जान ले, तो उनके उत्पात से बचना सहज हो जाय— अपने शरीर के अनुकूल आहार-व्यवहार का ठीक-ठीक पता लग जाय और उसे बार-बार कष्ट न उठाना हो। अपने शरीर की स्वाभाविक कमज़ोरियों को दबाना ही शिक्षा का मुख्य काम है, और जो कष्ट शिक्षा से दूर नहीं होता, उसके लिये चिकित्सा की ज़रूरत पड़ती है। स्वर्गीय डॉक्टर इंदुमाधव मल्लिक एम्० ए०, एम्० डी० बी० एल्० बहुधा विद्यार्थियों का इलाज किया करते थे; इसलिये उन्हें नवयुवकों की स्वास्थ्यविषयक त्रुटियों का अच्छा ज्ञान हो गया था। कलकत्ता-युनिवर्सिटी-इंस्टिट्यूट (Calcutta University Institute) में भाषण करते समय एक मरतबे उन्होंने कहा भी था कि युवकों के स्वास्थ्य में गड़बड़ी बहुधा उन्हें उचित आहार न मिलने के कारण पाई जाती है।

यद्यपि कितने ही भारतीय युवकों की ऐसी हैसियत ही

नहीं होती कि अच्छा भोजन कर सकें, तथापि, क्या
गरीब क्या अमीर, बुराई साधारणतः लड़कों की असावधानी
के कारण देखने में आती है। जो लड़के खाने-पीने
खुशहाल हैं, वे अधिकतर मिठाई और अन्य चटपटी चीज़ों
के ऊपर जान दिए रहते हैं। पर मिठाई ऐसी चीज़
नहीं, जिससे युवकों के शरीर में रुधिर बने या बल
आये। मिठाई में अधिक हिस्सा चीनी और घी का होता
है। ये दोनों पदार्थ शरीर में उष्णता लानेवाले हैं। इनसे
शरीर में दृढ़ पेशी और हड्डियाँ नहीं बन सकतीं। लड़कों के
बढ़ते हुए शरीर में रोटी, मक्खन, दूध, दही, साक और ता
फल की उचित अंश में विशेष ज़रूरत होती है। लेकिन ये
चीजें बहुत कम को मिलती हैं। बिगड़ी हुई रुचि के कारण
हो या बेपरवाही से हो, यह लड़कों का मिठाई खाना केवल
जिह्वा का स्वाद है। इतना ही नहीं, उसमें हानि भी होती है।

जब हम ऐसी चीजें खा सकते हैं, जिससे हमारे अंग में
बल और मस्तिष्क में पुष्टि आवे, तो व्यर्थ ही किसी चीज़ से
पेट भरना केवल मूर्खता है! इसी तरह मामूली हैसियत के
लड़के भी पकौड़ी, कचालू और चाट इत्यादि खा-खाकर
अपनी पाचन-शक्ति बिगाड़ डालते हैं। भूखे रहना अच्छा
; पर इन पदार्थों से पेट भरना अच्छा नहीं।

स्वास्थ्य के लिये सबसे बढ़िया नियम तो यह है कि जब खायँ, तो घर के भीतर पकी हुई ताज़ी रसोई। बस, यही हमारे लिये अमृत है, और सब बाज़ार की चीज़ें विष। पर इसका निबाहना ज़रा कठिन है; क्योंकि जब बीच में भूख की व्याकुलता बढ़ती है, तब कुछ न खाना और केवल रसोई पर लौ लगाए रहना बड़े संयम का काम है।

ऐसे समय मुनक्के, पाव-आध पाव दूध, दो-चार छुहारे, पिनखजूर, किशमिश, बादाम वा एक-दो केले से काम चलाना चाहिए। जिन्हें यह भी न मिल सके, वे सुबह-साम भिगोए चने, दो-चार बताशे वा शरबत ही से भूख शांत कर सकते हैं; पर जहाँ तक हो बाज़ार की मिठाई से पीछा छुड़ाना ज़रूरी है।

हमारे नवयुवकों में कुछ तो आहार की ओर से उदासीन होते हैं, कुछ ऐसे भी हैं, जिनके सामने जो कुछ आ जाय, वही खाते जायँगे, तथा कभी तो आधे-पेट या खाली ही पेट रह-कर काम में डट जायँगे, और कभी खूब अकड़कर खाते और सोते रहेंगे। इसका परिणाम भयानक होता है। सच पूछिए तो यही कारण है कि हम आज चारों ओर विद्यार्थियों को म्लान-मुख और हीन-काय देखते भी हैं।

नवयुवकों के स्वास्थ्य के विषय में दूसरी बात है उनके

व्यवहार में किसी क्रम का न होना। वे सब काम ऊटपटांग किया करते हैं। न उनके सोने का समय निश्चित है, न पाखाने जाने का, न घूमने का और न खाने का। ताश खेलते-खेलते या गप लगाते हुए वे सारी रात जागते रहते हैं। सोते हैं, तो न शौच का समय देखते हैं, न स्नान का और न भोजन का।

यह बिलकुल स्वाभाविक है। सयाने आदमी सालों के अभ्यास से अपना काम समय पर कर लेते हैं; पर लड़कों को अभ्यास डालते-डालते दिन लग ही जाते हैं। हाँ, होश सँभालने पर बेपरवाही करना ठीक नहीं। खाने, पीने, सोने और शौच करने का समय बाँधकर देखा जाय, तो मालूम हो कि शरीर भी घड़ी के काँटे की चाल चलता है। यदि तुम ठीक समय पर सुबह ६½ बजे भोजन कर लेने का नियम कर लो, तो १५ दिन के बाद देखोगे कि ठीक उसी समय तुम्हें भूख लगती है। चाहे फिर घड़ी में ६½ न बजे हों। स्वास्थ्य बनाए रखने के जितने उपाय हैं, उन सबको एक तरफ़ रखिए और समय पर काम करने को एक तरफ़। लाभ बराबर रहेगा। जब तक शरीर अच्छा है, तभी तक चेतने का समय है। एक तब शरीर बहुत खराब हो जाता है, तो लाख यत्न

जीजिए, कुछ नहीं होता। इस अनुभव से लाभ उठाने का अपूर्व अवसर केवल नवयुवकों के हाथ में है। वास्तव में शरीर के बिगड़ने के कई कारण हैं। जैसे—दरिद्रता, उपयुक्त चिकित्सा-प्राप्ति का अभाव, स्कूल की हालत, बाल-विवाह, सामाजिक उतार-चढ़ाव, असमान उतार-चढ़ाव, उचित देख-रेख का अभाव, स्वास्थ्य-संबंधी नियमों की अज्ञता, पुरुष का पुरुष के साथ अस्वाभाविक प्रेम, बालक-बालिकाओं की साथ-साथ शिक्षा तथा सामाजिक व्यवहारों का अभाव आदि।

ख़ैर, यह सब कहने-सुनने की बातें हैं। लड़के अपने ही मन की करते हैं। फल यह होता है कि खाने-पीने के असंयम और कुव्यवस्था से छोटी ही उमर में उनके शरीर में बहुत-से रोग घर कर लेते हैं। कैसा ही बलिष्ठ शरीर क्यों न हो, १६-१७ वर्ष की अवस्था होते-होते सिर में बराबर दर्द, क़ब्ज़, दिल की धड़कन, स्वप्न-दोष इत्यादि शिकायतें बीच-बीच में शुरू होने लगती हैं।

दुःख की बात तो यह है कि लड़के अपने ज्येष्ठ भाई-बंधु या माता-पिता को इसका हाल नहीं देते। चुरा-छिपाकर वे घर से रुपए ले जाते हैं, और विज्ञापन पढ़कर धातु-पुष्टि की गोलियाँ इत्यादि मँगवाने लगते हैं। पर इससे

का इस्तेमाल कम और मजबूरी दर्जे करते हैं। यह बात पक्की है कि प्रायः दवाओं के अधिक खाने, और हम लोगों को दवाओं के भरोसे रहने से ही छोटा रोग भी पेचीदा, बड़ा और असाध्य हो जाता है। यदि आखिरी दर्जे दवा लेनी ही हो, तो पहले किसी बहुत पढ़े-लिखे और शौक़ से होमियोपैथिक का इलाज करनेवाले के पास जाना चाहिए। इससे काम न चले, तो किसी यूनानी हकीम और पीछे किसी वैद्य का नुसखा लेने में भय कम रहेगा। परंतु हमारा विश्वास तो यह है कि इस उमर में स्वास्थ्य की गड़बड़ी डॉक्टर के कहे अनुसार चलने से दूर हो जाती है।

ज्यों ही कोई पीड़ा हो, नवयुवक का धर्म है कि वह निडर होकर अपने गुरुजनों से सलाह ले, और उनके हाथ में अपने को सिपुर्द कर दे। हाँ, इसमें परहेज से भी बहुत सहायता मिल सकती है। पर होशियार डॉक्टरों की चिकित्सा के बिना रोग का जड़-मूल से जाना जरा कठिन है। यहाँ पर चिकित्सा से मतलब यह नहीं कि डॉक्टर हकीम के पास दौड़-दौड़कर जाया जाय, और खूब दवा का सेवन किया जाय। जिन दो-चार बातों, को मैं यहाँ नीचे लिखता हूँ, उन पर यदि ध्यान दिया जाय, तो स्वास्थ्य प्राप्त करना कुछ सहज हो जाय।

युवकों के लिये सबमें बुरी बीमारी क़ब्ज़ वा पे
का साफ़ नहीं रहना है। इसके दूर करने का एक-मात्र
उपाय व्यायाम है। माना, आपका शरीर दुर्बल है, और
आप कोई कठोर व्यायाम नहीं कर सकते; पर आपसे
सध सके, वही कीजिए। आप दो ही चार डंड लगाइ
५-७ बार ही मुग्दर भाँजिए, सड़क पर एक दौड़ ल
लीजिए या थोड़ी दूर घूम आइए; पर जो कुछ कीजिए
मुस्तैदी के साथ कीजिए, और उसे, शरीर में ज्यों-ज्यों बल
आता जाय, बढ़ाते जाइए। दूसरा उपाय है पाख़ाने में समय
पर कम-से-कम दो बार जाना। इसमें आलस्य करना युवकों
के लिये महा पाप है। इस तरह थोड़ा-थोड़ा व्यायाम करना,
हमेशा पेट साफ़ रखना, खाने में शाक-भाजी का निरंतर व्यव-
हार रखना, मेवे में किशमिश मुनक्का, ख़ूब बारीक़ पिसा हुआ
बादाम, अंजीर, फलों में केले, नारंगी, बे बीज के अमरूद, सेब
ल तथा पपीता बहुतायत से खाना युवकों के लिये
च्छा रहता है, और फिर किसी प्रकार कष्ट
ा। हँसी-दिल्लगी में अधिक दबा लेना वैसा ही बुं
है, जैसा फ़ाक़े या उपवास करना। मेरे ख़याल से
यता या धर्म के नाम पर भी फ़ाक़ा करना नवयुव
ि अच्छा नहीं है। उनके लिये

उसे पुष्टि न देना एक हलकी आत्महत्या है। आप देखेंगे कि फ़ाक़ा करने के बाद स्वस्थ शरीर में सदैव कुछ-कुछ गड़बड़ी आ जाती है। इसलिये नवयुवकों को व्रत न करना और सफ़र इत्यादि में भी खाने का प्रबंध रखना उचित है। हठ या ग़ुस्से के मारे भोजन न करना तो और भी बुरा है। नवयुवकों को नियम कर लेना चाहिए कि लड़ाई-भिड़ाई, सफ़र, व्रत आदि में भी खाने में त्रुटि न पड़ने पावे। सब काम बंद हों, खाना न बंद हो। यह अनुभव किया गया है कि रोग की मुख्य जड़ निर्बलता है, और शरीर में भोजन न मिलने पर निर्बलता आ जाना निश्चय है। यहाँ तक कि इस प्रकार मन और चरित्र की भी निर्बलता आधा-पेट खानेवालों को ही सताती है।

ज्वर इत्यादि के बाद या किसी प्रकार की दुर्बलता में उत्साह के मारे एकापक कोई बोझ उठा लेना, या कोई शारीरिक परिश्रम कर ... हृदयपिंड, दोनों के लिये बड़ा बुरा होता ... युवक जन्म-भर के लिये रोगी ... का फल है, जो ... इससे सदा सतर्क

... दौड़ने कूदने या

परिश्रम करने से शरीर की रगों को बहुत धक्का पहुँचता है, और आदमी बेकाम हो जाता है—विशेष कर,कुलीन जातियों में, जिनके यहाँ हाथ से मिहनत करने की परिपाटी पुरखों के समय ही से छूट गई है, शरीर कुछ सुकुमार पड़ गया है। ऐसे परिवारों के लड़कों को क्षणिक उत्साह में आकर अधिक घाम में घूमना, बोझ ढोना या लगातार ८-१० घंटे शारीरिक परिश्रम करना बड़ा भयानक फल दिखलाता है।

नवयुवकों से, जहाँ तक बन पड़े, यदि निम्न-लिखित पदार्थों से परहेज हो सके, तो स्वास्थ्य की रक्षा करना बहुत आसान हो जाय। जैसे भाँग, गरम मसाले, अदरक, अचार, बीड़ी, खटाई, लहसुन, प्याज, अंडे, रांड़ मछली, सिरका, बीड़ी-चुरुट, तंबाकू, सुपारी, रात के समय का दही, गुड़ या चीनी, चटनी, मालपुए, मिठाई इत्यादि।

इसके अतिरिक्त स्वप्न दोष से बचने की चर्चा अन्यत्र की गई है। आशा है, उसके तत्त्व पर विचार करने से थोड़ा-बहुत सहारा मिलेगा। मेरा तो बराबर यही सिद्धांत रहा है कि घर में आग लगने पर कुआँ खोदने से अच्छा है कि पहले ही से कुआँ खोद रक्खें।

अंत में यह विचारने की बात है कि जब फौज से सिपाहियों को एक स्थान से दूसरे स्थान से जाने और उनके हथियार बाँधने

अमल करते हैं ; जिन्हें उन्होंने पहले से अपने लिये हि
कर और उपयुक्त समझकर अपने लिये लाज़िमी तय क
रक्खा है ।

युवकों का धार्मिक विचार

कहने में आता है कि आजकल नवयुवकों में धार्मिक अविश्वास बहुत बढ़ गया है—जिससे मिलिए, वही शून्य-वादी निकलता है; इससे उनके सुख-स्वास्थ्य में बड़े विघ्न आते हैं। पर यह बात नहीं है। अब भी कदाचित् ही कोई ऐसा युवा पुरुष हो, जो नित्य के व्यवहार में अपने अनुभवों से घबराकर कभी-कभी "अदृष्ट" को न पुकारता हो—"असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय" अर्थात् हे भग-वन् ! मुझे झूठ से सच की ओर ले चल, अंधकार से ज्योति में ले जा।

यदि पूछिए कि यह क्यों, तो कहना पड़ेगा कि इस आदर्श की ओर बार-बार मनुष्य का ध्यान जाने का कारण उसके शरीर और मन का संगठन है। वह स्वभाव से असीम, अनंत और अपरिमेय उन्नति-पथ की ओर जाता है। उसका हृदय सदा अतृप्त रहता है। उसकी मनोवृत्तियाँ अप्रतिहत विकाश प्राप्त

करना चाहती हैं। इस संसार के भोग-विलास और सज-धज सब पीछे रह जाते हैं, सकल सुख-सामग्रियाँ ओछी पड़ जाती हैं। मनुष्य उनसे ऊब उठता है।

महात्मा टॉमस० ए० केंपिस की भी ऐसी ही धारणा है—

"Let nothing seem great, nothing precious and wonderful, nothing worthy of estimation, nothing high, nothing truly commendable and to be desired, but that alone which is eternal

Thomas a Kempis

अर्थात् किसी वस्तु को बड़ी, बहुमूल्य या आश्चर्यजनक न मानो, किसी को आदरणीय, श्रेष्ठ या वास्तव में सराहनीय न जानो, सिवा ऐसे पदार्थ के जो अक्षय, अविनाशी और अनंत है।

भला मनुष्य की जिस जाति के ऐसे कठिन संकल्प हैं, ऐसी उच्च कोटि की आवश्यकताएँ हुआ करती हैं, उनका संतुष्ट होना क्या खेल है ? क्या उनकी क्षुधा साधारण उपायों से निवृत्त हो सकती है ? हम तो अपने प्राचीन शास्त्रकारों ही का निदान भजना जानते हैं—

"तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।"

[मुण्डक उपनिषद्]

अर्थात् जब मनीषी पुरुष अपने चित्त को स्थिर करके ईश्वर को पहचानता है, और उनका—ऐसे परमात्मा का, जिसका सहज में पता नहीं चलता, पर जो सर्वत्र विद्यमान है, जो घट-घट में वास करता है, और जो पुराण पुरुष है—आश्रय लेता है, तब वह हर्ष और शोक के परे हो जाता है, और शांति लाभ कर सकता है।

इस विचार में कुछ व्यक्तिगत दुराग्रह नहीं है। पृथिवी पर जितनी जातियाँ हैं या इतिहास में जिन-जिन युगों का वर्णन है, उनमें से कोई भी ऐसा नहीं पाया जाता, जिसका धार्मिक समाज ईश्वर के संबंध में कुछ ऐसे ही विचार नहीं रक्खे हो, वा न रखता हो।

सब गुणों का कलाप; सब दुर्लभ वस्तुओं का भंडार, सब आशाओं का केंद्र, सब उन्नति की चरम सीमा, जगत् का आधार परमात्मा है, चाहे हम उसे पुरुष-स्वरूप मानें या सुभीते के लिये केवल पूर्वोक्त अनुपम गुणों का निधान समझें।

महात्मा टॉमस० ए० कॅंपिस का यह वचन कैसा ललित एवं उपदेश प्रद है—

"Grant me, Omost sweet and loving Lord! to rest in thee above all health and beauty, all glory and honour, above all power

and dignity, above all knowledge and subtlety, above all riches and arts, above all joy and gladness, above all fame and praise, above all sweetness and comfort, above all hope and praise, above all desert and desire."

(*Thomas* a *Kempis.*)

अर्थात् हे प्रभो ! तू मुझे अपनी शरण में ले; क्योंकि मैं तुझे स्वास्थ्य और सौंदर्य से, गौरव और प्रतिष्ठा से, श और महिमा से,ज्ञान और चतुराई से, संपत्ति और कला हर्ष और आमोद से, यश और प्रशंसा से, सुख औ ाधुर्य से, आशा और भरोसा से एवं इच्छा और कामन अधिक चाहता हूँ ।

इन वाक्यों को उद्धृत करने से मेरा तात्पर्य यह दिखलाने का नहीं है कि संसार के इन अनमोल पदार्थों को तुच्छ जानकर और लात मारकर राम-राम रटने ही से कोई भक्त-शिरोमणि हो जाता है या हो सकता है, किंतु आशय यह है कि मनुष्य को इन सब सामानों के होते हुए भी कुछ लालसा बाक़ी रहती है ।

बहुधा असंयम के कारण इन विषयों में भटककर मनुष्य और भी चंचल होकर परमार्थ से—जो शांति और परमानंद

नाश करता है—भ्रष्ट हो जाता है। उस समय मनुष्य अपने को इन भोगों से हटा लेता है, और बहुत कुछ सँभलना चाहता है; पर सब कुछ होने पर भी भुक्त विषयों की तृष्णा वा हवस शीघ्र नहीं जाती। उसके लिये भी शास्त्रकार ने कहा है—

"रसवर्जं रसोऽप्यस्य,पर दृष्ट्वा निवर्तते"

अर्थात् विषय-भोगों की ओर से मन तब ही उचाट होता है, जब मनुष्य का भगवान् से साक्षात् होता है अर्थात् जब मनुष्य विषय-भोगों के परे भी अपनी दृष्टि दौड़ाता है, और उनसे भी अधिक प्रिय और मनोहर वस्तु की खोज में निकलता है।

इस प्रकार मनुष्य की आत्मा का विकास और स्वभाव का उत्कर्ष ईश्वर को निज लक्ष्य बनाने ही से सिद्ध होता है।

बीच-बीच में जब वह अपने सात्त्विक और गंभीर अवस्थाओं में स्थिर किए हुए प्रणों से स्खलित होता है, जब उसे पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म में अंतर मालूम होने लगता है, जब उसके हृदय-पटल पर यह अनुभव दृढ़ रूप से जम जाता है—

"न अंतलिक्खे न समुद्दमज्झे, न विवरं पब्बितानं पविस्स।
न विज्जति सो जगतप्पदेसो, यत्थट्ठितो मुञ्चेय्य पापकम्मा।" (धम्मपद)

अर्थात् , पाताल, गिरि, गह्वर में जहाँ जाइए, कहीं

भी पाप के दंड से छुटकारा नहीं है; उससे सदा विमुख ही रहना चाहिए—तब धर्म का अनुराग ही आत्मसुधार में उसका सहायक होता है। धर्म की उत्तेजना के आगे ही उसे सब अनुचित क्रियाएँ फीकी मालूम होने लगती हैं। धर्म के उच्छ्वास के सम्मुख और सब सुख-भोग मंद पड़ जाते हैं। भगवद्भक्ति की लहर की तुलना में इंद्रिय- झूठी ठहरती है। क्यों न हो, हमारे भक्त-चूड़ामणि तुल- दास ने भी इसी मर्म का एक भजन कहा है—

नाहिन चरण-रति, ताहि ते सहौं विपति
कहत श्रुति सकल, मुनि मति धीर।
बसै जो शशि-उछंग, सुधास्वादित कुरंग
ताहि को भ्रम निरास, रविकर नीर।
सुनिय नाना पुराण, मिटत नहिं अज्ञान
पढ़िय ने समुझिय, जिमि खग कीर।
बूझत विनोद पास, सेमर सुमन-आस
करत चरत तेइ, फल बिनु हीर।
तुलसिदास भरोस, परम करुणा-कोश
प्रभु हरिहैं, विषम भव-भीर।

र्थात् भगवान् के चरण-कमलों में हमें प्रीति नहीं है; इ- हम अनेक विपत्तियाँ सहते हैं। यही सब शास्त्रों औ-

तत्त्वविचार मुनियों का कहना है। जो हरिण चंद्रमा की गोद में विश्राम करता हुआ अमृत का स्वाद लेता है, उसे क्या मृग-तृष्णा देखकर भ्रम हो सकता है? अनेक पुराणों के पढ़ने और सुनने पर भी अज्ञान न मिटने का क्या हेतु है? वे उन्हीं तोतों की भाँति हैं, जो सारविहीन सेमर के पुष्प को चोंच से कतरते हैं, और निराश होते हैं। इसलिये कृपालु भगवान् को पुकारकर गोस्वामी तुलसीदासजी संसार के झगड़ों से निस्तार देने की प्रार्थना करते हैं।

इन्हीं कारणों से यह उचित जान पड़ता है कि कुछ भक्ति-रस के छंदों और भजनों का संग्रह धार्मिक जीवन के लिये सर्वथा उपयोगी और लाभदायक होगा। उनका समय-समय पर पाठ करना तथा लयस्वर के साथ गाना मानो कुवासनाओं और दुश्चिंताओं के भूत को दूर भगाना है। जब ही प्रलोभन का सामना हो, तब ही स्वर से एक-न-एक भजन छेड़ देना चाहिए। कोई सप्ताह वा दिवस ऐसा न जाने पावे, जब इस की शृंखला टूटने का भय हो; क्योंकि असावधानी देखकर फिर से मोह और पाप के पिशाच सिर पर सवार हो जायँगे।

चित्त-शुद्धि के निमित्त भगवद्भजन और उपासना का तार न टूटने पावेगा, तो आजकल के अनुभवहीन, चपल-

प्रकृति नवयुवकों का बहुत-सा समय, बल, पौरुष, ते
और साहस क्षय होने से बच जायगा । कुमार्ग में वे भूले-
भी नहीं पड़ेंगे । आत्मोन्नति और स्वाध्याय में उन्हें कभी विघ्न
नहीं पड़ेगा । वे समाज में अपनी विद्या, बुद्धि, संपत्ति और
स्थिति में उत्तरोत्तर वृद्धि करने के अवसर कभी न खोवेंगे ।
उन्हें कभी किसी प्रकार का पछतावा न होगा । उनके चरित्र
की उत्तमता और अनूठेपन के ऊपर चतुर्दिक धन्य-धन्य की
ध्वनि उठेगी । उनके उदाहरण से इस अवनीतल पर भी
शील-गुण में स्वर्गीय झलक दिखलाई देगी और लोग मनुष्यों
को देखकर उनके विधाता तक का स्मरण करेंगे ।

बड़ों का कर्तव्य

अब के लोगों को दूसरों से भाड़े पर अपना काम निकालना खूब आता है। अपना कारबार गुमाश्ते-मुनीम पर, मंदिर की पूजा और अर्चन पुजारियों पर, बालक-बालिकाओं की शिक्षा थोड़ा-सा वेतन पानेवाले शिक्षकों पर डालकर वे निश्चिंत सोया करते हैं। गर्व के साथ वे कहते भी हैं कि हम स्वयं अपना काम नहीं देखते, इसलिये क्या हमारा काम रुक रहता है?

उधर शिक्षक सोचते हैं कि अभिभावक अपने विद्यार्थी की खास-खास बातों की देख-रेख करते हैं, और इधर अभिभावक यह समझे बैठे हैं कि बालक एक योग्य एवं विद्वान् शिक्षक की देख-रेख में है, इसलिये उसकी देख-रेख की जरूरत नहीं है। इसी झगड़े में बालक हाथ से निकल जाता है।

किंतु उनकी आँखें उस समय खुलती हैं, जब वे देखते हैं

अशिक्षित नवयुवकों का बहुत-सा समय, बल, पौरुष, ते
और साहस क्षय होने से बच जायगा। कुमार्ग में वे भूले-
भी नहीं पड़ेंगे। आत्मोन्नति और स्वाध्याय में उन्हें कमी वि
नहीं पड़ेगा। वे समाज में अपनी विद्या, बुद्धि, संपत्ति औ
स्थिति में उत्तरोत्तर वृद्धि करने के अवसर कभी न खोवेंगे।
उन्हें कभी किसी प्रकार का पछतावा न होगा। उनके चरित्र
की उत्तमता और अनूठेपन के ऊपर चतुर्दिक धन्य-धन्य की
ध्वनि उठेगी। उनके उदाहरण से इस अवनीतल पर भी
शील-गुण में स्वर्गीय झलक दिखलाई देगी और लोग मनुष्यों
को देखकर उनके विधाता तक का स्मरण करेंगे।

बड़ों का कर्तव्य

अब के लोगों को दूसरों से भाड़े पर अपना काम निकालना खूब आता है। अपना कारबार गुमाश्ते-मुनीम पर, मंदिर की पूजा और अर्चन पूजारियों पर, बालक-बालिकाओं की शिक्षा थोड़ा-सा वेतन पानेवाले शिक्षकों पर डालकर वे निश्चिंत सोया करते हैं। गर्व के साथ वे कहते भी हैं कि हम स्वयं अपना काम नहीं देखते, इसलिये क्या हमारा काम रुक रहता है ?

उधर शिक्षक सोचते हैं कि अभिभावक अपने विद्यार्थी की खास-खास बातों की देख-रेख करते हैं, और इधर अभिभावक यह समझे बैठे हैं कि बालक एक योग्य एवं विद्वान् शिक्षक की देख-रेख में है, इसलिये उसकी देख-रेख की जरूरत नहीं है। इसी झगड़े में बालक हाथ से निकल जाता है।

किंतु उनकी आँखें उस समय खुलती हैं, जब वे देखते हैं

कि वे चाहे कितने ही रुपए खर्च करें, और चाहे इसमें उनके लड़के साहब भले ही क्यों न हो जायँ; पर वे अच्छे चलन-वाले नहीं बन सकते, उनमें गंभीरता और धार्मिकता नहीं आ सकती, एक पवित्र आदर्श को लेकर वे अपनी दिनचर्या नहीं बना सकते।

ऐसी स्थिति में उनके आगे जो अड़चन पड़ती है, उससे उन्हें उस समय तक निस्तार नहीं मिलता, जब तक वे अपने काम में स्वयं आप हाथ नहीं लगाते। अपनी संतान को आप भला-बुरा नहीं बनाना चाहते, तो दूसरों को क्या चिंता पड़ी है। इसमें दूसरों की शरण लेने से काम न चलेगा। दूसरे कुछ कह ही नहीं सकते।

कितने ही संबंधी, मुहल्ले-टोलेवाले और अध्यापक केवल संकेत करके रह जाते हैं—कुछ खुलकर नहीं कह पाते। कोई कहता है—"क्यों भाई! तुम्हारा चेहरा सूखा क्यों जाता है? पढ़ने में आजकल बहुत मिहनत तो नहीं पड़ती?" कोई कहता है—"क्यों आजकल क्या, खाते हो? रात को अधिक जागना होता है क्या, या किसी बात की तकलीफ़ है?"

यह कोई नहीं कहता—"क्यों जी कुसंगति में तो नहीं पड़ गए? कोई बुरा अभ्यास तो नहीं लग गया? मन में पाप की बातें तो नहीं लाते? देखो, यह व्यसन ऐसा होता

है; इसमें ऐसा धोखा होता है। इससे हम इस प्रकार बचे, और तुम भी इसी प्रकार बच सकते हो।"

किसकी हिम्मत पड़ती है? केवल अपना सगा बड़ा भाई, चचा वा बाप बिना किसी निंदा वा उलझन के यह "गुप्त" उपदेश कह डाले, सो कह डाले। दूसरे लोगों ने लड़कों से ज़रा कुछ कहा नहीं कि अपवाद उठा।

सच है, दूसरों का कहा कुछ काम भी नहीं कर सकता। और, जैसा कई नवयुवकों ने मुझसे बतलाया भी है, मामूली आदमियों के मुँह से इन बातों की चर्चा सुनने से उलटे उनका चित्त बिगड़ जाता है।

एक अनुभवी लेखक का कथन है कि इस कार्य के लिये प्रथम तो माता-पिता अपनी संतान की हित-कामना से स्वयं एकांत में उन्हें उचित परामर्श दें, दूसरे परिवार के डॉक्टर वा वैद्य चिकित्सा-शास्त्र के आधार पर उन्हें समझावें, तीसरे घर के आचार्य वा पुरोहित नीति और धर्म के पक्ष में उन्हें उपदेश दें। युवावस्था में इन तीनों को मिलकर प्रत्येक नव-युवक की रक्षा का भरसक यत्न करना चाहिए।

इस प्रस्ताव में भी यदि संकोच हो, तो लड़कों के हाथ छपी हुई कथा-कहानी देकर संकेत किया जा सकता है।

कि वे चाहे कितने ही रुपए खर्च करें, और चाहे इनमें उनके लड़के माहिर भले ही क्यों न हो जायँ; पर वे अच्छे लक्षण-वाले नहीं बन सकते, उनमें गंभीरता और धार्मिकता नहीं आ सकती, एक पवित्र आदर्श को लेकर वे अपनी दिनचर्या नहीं बना सकते।

ऐसी स्थिति में उनके आगे जो अड़चन पड़ती है, उससे उन्हें उस समय तक निस्तार नहीं मिलता, जब तक वे अपने काम में स्वयं आप हाथ नहीं लगाते। अपनी संतान को आप भला-बुरा नहीं बताना चाहते, तो दूसरों को क्या चिंता पड़ी है। इसमें दूसरों की शरण लेने से काम न चलेगा। दूसरे कुछ कह ही नहीं सकते।

कितने ही संबंधी, मुहल्ले-टोलेवाले और अध्यापक केवल संकेत करके रह जाते हैं—कुछ खुलकर नहीं कह पाते। कोई कहता है—"क्यों भाई! तुम्हारा चेहरा सूखा क्यों जाता है! पढ़ने में आजकल बहुत मिहनत तो नहीं पड़ती!" कोई कहता है—"क्यों आजकल क्या, खाते हो? रात को अधिक जागना होता है क्या, या किसी बात की तकलीफ है!"

यह कोई नहीं कहता—"क्यों जी कुसंगति में तो नहीं पड़ गए? कोई बुरा अभ्यास तो नहीं लग गया? मन में पाप की बातें तो नहीं लाते? देखो, यह व्यसन ऐसा होता

है; इसमें ऐसा धोखा होता है। इससे हम इस प्रकार बचे, और तुम भी इसी प्रकार बच सकते हो।"

किसकी हिम्मत पड़ती है? केवल अपना सगा बड़ा भाई, चचा वा बाप बिना किसी निंदा वा उलझन के यह "गुप्त" उपदेश कह डाले, तो कह डाले। दूसरे लोगों ने लड़कों से जरा कुछ कहा नहीं कि अपवाद उठा।

सच है, दूसरों का कहा कुछ काम भी नहीं कर सकता। और, जैसा कई नवयुवकों ने मुझसे बतलाया भी है, मामूली आदमियों के मुँह से इन बातों की चर्चा सुनने से उलटे उसका चित्त बिगड़ जाता है।

एक अनुभवी लेखक का कथन है कि इस कार्य के लिये प्रथम तो माता-पिता अपनी संतान की हित-कामना से स्वयं एकांत में उन्हें उचित परामर्श दें, दूसरे परिवार के डॉक्टर वा वैद्य चिकित्सा-शास्त्र के आधार पर उन्हें समझावें, तीसरे घर के आचार्य वा पुरोहित नीति और धर्म के पक्ष में उन्हें उपदेश दें। युवावस्था में इन तीनों को मिलकर प्रत्येक नवयुवक की रक्षा का भरसक यत्न करना चाहिए।

इस प्रस्ताव में भी यदि संकोच हो, तो लड़कों के हाथ छपी हुई कथा-कहानी देकर संकेत किया जा सकता है।

कि वे चाहे कितने ही रुपए खर्च करें, और चाहे इसमें उनके लड़के मास्टर भले ही क्यों न हो जायँ; पर वे अच्छे लक्षण-वाले नहीं बन सकते, उनमें गंभीरता और धार्मिकता नहीं आ सकती, एक पवित्र आदर्श को लेकर वे अपनी दिनचर्या नहीं बना सकते।

ऐसी स्थिति में उनके आगे जो अड़चन पड़ती है, उससे उन्हें उस समय तक निस्तार नहीं मिलता, जब तक वे अपने काम में स्वयं आप हाथ नहीं लगाते। अपनी संतान को आप भला-बुरा नहीं बताना चाहते, तो दूसरों को क्या चिंता पड़ी है। इसमें दूसरों की शरण लेने से काम न चलेगा। दूसरे कुछ कह ही नहीं सकते।

कितने ही संबंधी, मुहल्ले-टोलेवाले और अध्यापक केवल संकेत करके रह जाते हैं—कुछ खुलकर नहीं कह पाते। कोई कहता है—"क्यों भाई! तुम्हारा चेहरा सूखा क्यों जाता है? पढ़ने में आजकल बहुत मिहनत तो नहीं पड़ती?" कोई कहता है—"क्यों आजकल क्या, खाते हो? रात को अधिक जागना होता है क्या, या किसी बात की तकलीफ है?"

यह कोई नहीं कहता—"क्यों जी कुसंगति में तो नहीं पड़ गए? कोई बुरा अभ्यास तो नहीं लग गया? मन में पाप की बातें तो नहीं लाते? देखो, यह व्यसन ऐसा होता

चारों ओर लहलहा रहे थे। आज उनमें से एक भी नहीं है। जिधर जाता हूँ, सूखी पत्तियाँ खड़खड़ाती मिलती हैं। उनके जिलाने में मैंने अपनी आधी छुट्टी गँवा दी थी। जानता, तो कभी इतना परिश्रम न करता। दादा! क्या यह उजड़ा हुआ बाग़ आपको सुहावना मालूम होता है?"

यों ही भूषण बड़बड़ा रहा था। इधर चाँदनी छिटक आई थी, और सींचे हुए बाग़ की क्यारियों से हवा में नमी फैल रही थी। उसी के साथ मेंहदी के फूलों में भीनी-भीनी धीमी-धीमी महक दौड़ने लगी। मैंने कहा—"भाई भूषण! तुम क्या चाहते हो? तुम्हारे कहने से क्या ऋतु भी न बदले? अब गेंदे-गुलदाउदी का समय गया; लो, ये मेंहदी के दिन आए।" भूषण ने कहा—"वाह! मेंहदी भी कोई फूल में फूल है!"

मैंने कहा—"इसे जाने दो। वह देखो, क्यारियों से रजनीगंधा का हलका सौरभ उठ रहा है; बेला-मोंगरा शोर कर रहे हैं; झाड़ियों के पार बेचारा परदेसी गुलचीन अपनी मिठास छोड़ रहा है।" भूषण ने कहा—"आप ग्रीष्मकाल के फूल तो बहुत-से गिना गए, पर उसमें से किसी में रंग-रूप भी है?" मैं कुछ सोचने लगा। भूषण ने कड़ककर कहा—"कहिए, हार मानते हैं।" मैंने कहा—"कैसे?" भूषण

मदन-दहन

(नवयुवकों के लिये एक कहानी)

कॉलेज बंद होने पर, गरमी की छुट्टियों में, मैं अपने छोटे भाई के साथ घर आया। रेल में सो न सका था, इसलिये नहा-धोकर भोजन के उपरांत घर के भीतर ही दो-चार मित्रों से मिल-मिलाकर सो गया। जब जगा, शाम हो गई थी। बैठक से बाग़ में आया। पास ही मेंहदी की टट्टियों के बीच चबूतरे पर आराम-कुर्सियाँ बिछी थीं। उनमें से एक पर लेट गया।

छोटा भाई भूषण भी कहीं से घूमता-फिरता आ पहुँचा। उसके चेहरे पर उदासी देखकर मैंने पूछा—"बात क्या है?" वह बहुत दुःखित हो कहने लगा—"आप सुबह से आए हुए हैं। कुछ देखा भी है। बाग़ की क्या दुर्दशा है! हम लोग जब क्रिसमस की छुट्टियों में आए थे, तो इसी में कितने प्रकार के फ़र्न क्रिसेंथमम क्रोटन, गेंदे, गुलदाउदी, गुलाब, जटामासी

चारों ओर लहलहा रहे थे। आज उनमें से एक भी नहीं है। जिधर जाता हूँ, सूखी पत्तियाँ खड़खड़ाती मिलती हैं। उनके जिलाने में मैंने अपनी आधी छुट्टी गँवा दी थी। जानता, तो कभी इतना परिश्रम न करता। दादा! क्या यह उजड़ा हुआ बाग़ आपको सुहावना मालूम होता है?"

यों ही भूषण बड़बड़ा रहा था। इधर चाँदनी छिटक आई थी, और सींचे हुए बाग़ की क्यारियों से हवा में नमी फैल रही थी। उसी के साथ मेंहदी के फूलों में भीनी-भीनी धीमी-धीमी महक दौड़ने लगी। मैंने कहा—"भाई भूषण! तुम क्या चाहते हो? तुम्हारे कहने से क्या ऋतु भी न बदले? अब गेंदे-गुलंदाउदी का समय गया; लो, ये मेंहदी के दिन आए।" भूषण ने कहा—"वाह! मेंहदी भी कोई फूल में फूल है!"

मैंने कहा—"इसे जाने दो। वह देखो, क्यारियों से रजनीगंधा का हलका सौरभ उठ रहा है; बेला-मोंगरा शोर कर रहे हैं; झाड़ियों के पार बेचारा परदेसी गुलचीन अपनी मिठास छोड़ रहा है।" भूषण ने कहा—"आप ग्रीष्मकाल के फूल तो बहुत-से गिना गए, पर उनमें से किसी में रंग-रूप भी है?" मैं कुछ सोचने लगा। भूषण ने कड़ककर कहा—"कहिए, हार मानते हैं।" मैंने कहा—"कैसे?" भूषण

बोला—"जब अपनी बारी आती है, तो ऐसे ही देर में समझते हैं। गरमी के फूलों में आप कोई शोभा और सुंदरता पाते हैं?" मैंने कहा—"शोभा और सुंदरता की जरूरत ही क्या है? इन दिनों जितने फूल होते हैं, उनके क़लम लगाए जाते हैं; बीज स नहीं उगाए जाते। फिर सुंदरता और शोभा से क्या काम?" भूषण ने कहा—"आप कह क्या गए? फूलों में रंग और सुंदरता न होने और पौधों के क़लम लगाने से क्या मतलब? क्या वही मसल है—कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा इत्यादि?"

मैंने कहा—"बात सीधी है। प्रकृति में कोई चीज बेकार नहीं होती। जाड़े के फूलों में रंग मतलब से होते हैं। अब वह मतलब पूरा हो जाता है, रंग भी उड़ जाते हैं। गरमी के दिनों में फूल और सब्जी के बढ़ने और फैलने में वह मतलब नहीं होता; इसीलिये फूलों पर रंग नहीं दिखाई पड़ता—फूल बहुधा सादे होते हैं।"

भूषण ने कहा—"बतलाए, फूलों पर रंग होने में क्या मतलब है।" मैंने कहा—"फूलों में कुछ नर होते हैं और कुछ मादा। जैसे फूल हुए वैसी ही उनमें गर्भ केसर होती है। जब तक दोनों प्रकार के फूलों की केसर और शहद का मेल नहीं होता, तब तक उनमें फल

नहीं लगता और अतः बीज भी नहीं पैदा हो सकता। कभी तो दोनों मेल के फूल एक दूसरे के निकट ही होते हैं और कभी दूर-दूर। उनको एक करने के लिये चीटियों, मक्खियों और तितलियों की जरूरत होती है। पर यदि फूलों पर रंग न हो, तो ये तितलियाँ या मधुमक्खियाँ उन पर बैठें ही नहीं। रंग की शोखी और भड़क से ही वे उनकी ओर खिचती हैं, और तब भिन्न-भिन्न फूलों के पराग और मधु उनके द्वारा एक होते हैं, और इस प्रकार प्रकृति का काम चलता है।"

भूषण ने कहा—"प्रकृति बड़े धोखे से काम लेती है। दिन में बेचारी मधुमक्खियाँ हजारों-लाखों फूलों के पराग ढो-ढोकर यहाँ से वहाँ किया करती हैं। कभी-कभी काँटों में बिंद जाती हैं, चिड़ियों का शिकार हो जाती हैं, कुछ नहीं तो इसमें अपनी छोटी-सी जिंदगी ही खो बैठती हैं! इधर प्रकृति का मुफ्त में काम बनता है। फूलों का रंग क्या है एक बड़ी माया है—इन क्षुद्र प्राणियों के लिये एक भ्रम-जाल है!"

मैंने कहा—"केवल इन्हीं प्राणियों की बात नहीं; संसार में जितने जीव हैं, सबसे प्रकृति इसी तरह अपना काम साधती है। सीधे-सीधे कोई किसी का काम नहीं करता।

बोला—"जब अपनी बारी आती है, तो ऐसे ही देर में सम-
झते हैं । गरमी के फूलों में आप कोई शोभा और सुंदरता पाते
हैं ?" मैंने कहा—"शोभा और सुंदरता की जरूरत ही क्या है ?
इन दिनों जितने फूल होते हैं, उनके क़लम लगाए जाते हैं,
बीज से नहीं उगाए जाते । फिर सुंदरता और शोभा से क्या
काम ?" भूषण ने कहा—"आप यह क्या गए ? फूलों में
रंग और सुंदरता न होने और पौधों के क़लम लगाने से
क्या मतलब ? क्या वही मसल है—कहीं की ईंट कहीं का
रोड़ा इत्यादि ?"

मैंने कहा—"बात सीधी है । प्रकृति में कोई चीज़ बेकार
नहीं होती । जाड़े के फूलों में रंग मतलब से होते हैं । जब
वह मतलब पूरा हो जाता है, रंग भी उड़ जाते हैं । गरमी
के दिनों में फूल और मक्खी के पड़ने और फैलने में वह
मतलब नहीं होता; इसीलिये फूलों पर रंग नहीं दिखाई
पड़ता—फूल बहुधा सादे होते हैं ।"

भूषण ने कहा—"बतलाए, फूलों पर रंग
क्या मतलब है ।" मैंने कहा—"फूलों में
हैं और कुछ सादा । जैसे फूल हुए बैठी
केसर होती है । जब तक दोनों म
केसर और शहद का मेल नहीं होता

है। मयूरी के तुमने पूँछ कभी न देखी होगी; वह छोटी और सुस्त भी होती है। पर मयूर का पुच्छल और उसमें रंग-बिरंगी हजारों आँखवाला पंख दो-दो हाथ लंबा होता है; उसके सिर का मुकुट भी बहुत सुहावना होता है।

बात यह है कि पशु-पक्षियों में प्रायः नर मादा से अधिक सुंदर होता है। इसी से नर मादा को रिझाता है। परंतु रिझाने के लिये और भी सामान है—जैसे चिड़ियों का चहकना और गाना, मृग की नाभी की कस्तूरी और उसकी कोसों तक जानेवाली सुगंध, हिरने के सींग, साँड़ या शेर का पुरता (Mane); ये सब मादा के लुभाने के लिये हैं। चिड़ियों में जिस नर के पंख अधिक चटकीले होते हैं, वह घने पक्षियों के बीच किसी डाल पर भी छिपा हो, तो मादा उसे ढूँढकर उसके पास जा बैठेगी। जिस बारहसींगे के सबसे अधिक छहदार सींग हैं, उसके पीछे मृगियाँ आप ही हो लेंगी। मछलियों में जिस नर के अधिक चमकदार पख (Fin) हैं, उसे मादा मछलियाँ अवश्य घेर लेंगी। जिस साँड़ के पुट्ठे भरे हुए हैं, उसी से गाएँ प्रसन्न रहेंगी।

बहुत करके पशु-पक्षियों में नर का सुख मादा के रिझाने

आवश्यक कार्य, धर्म या कर्तव्य समझकर भी लोग उनका संपादन न करते! विशेषकर एक ऐसा काम, जिस पर संसार का चलना निर्भर है, मनमौजी आदमियों की इच्छा पर नहीं छोड़ा जा सकता। इसीलिये प्रकृति पहले जीवों को रंग, रूप, गंध या मधुर शब्द से लुभा लेती है; फिर उनसे काम बनाती है। यदि ऐसा न हो, तो अंडज, स्वेदज या पिंडज—किसी की संतति चले ही नहीं!"

भूषण ने कहा—"मधुमक्खियों और तितलियों को लुभाकर उनसे काम लेने की बात तो समझ में आई। अब यह बताइए कि किस आकर्षण द्वारा प्रकृति दूसरे प्राणियों का संयोग कराती है।"

मैंने कहा—"यह कोई गूढ़ बात नहीं है। इसी साल तुमने कॉलेज के मैदान में सेमर (शाल्मली) का वृक्ष देखा होगा। पत्ती उसमें एक न थी; पर जड़ से चोटी तक वह सिंदुरिए फूलों से भरा हुआ था। उस पर झुंड की झुंड बुलबुलें बैठा करती थीं। ध्यान से देखते, तो जान पड़ता कि उनमें नर के चोटी होती है, पूँछ के नीचे लाल लाल बूँदें होती हैं, और फुदकना भी वह बहुत है; पर मादा बिलकुल सादे पर की होती है—उसमें कोई विशेषता नहीं रहती। यही हाल नीलकंठ, पपीहा और मयूर का

है। मयूरी के तुमने पूँछ कभी न देखी होगी; वह छोटी और सुस्त भी होती है। पर मयूर का पुच्छल और उसमें रंग-बिरंगी हजारों आँखवाला पंख दो-दो हाथ लंबा होता है; उसके सिर का मुकुट भी बहुत सुहावना होता है।

बात यह है कि पशु-पक्षियों में प्रायः नर मादा से अधिक सुंदर होता है। इसी से नर मादा को रिझाता है। परंतु रिझाने के लिये और भी सामान है—जैसे चिड़ियों का चहकना और गाना, मृग की नाभी की कस्तूरी और उसकी कोसों तक जानेवाली सुगंध, हिरने के सींग, साँड़ या शेर का पुरता (Mane); ये सब मादा के लुभाने के लिये हैं। चिड़ियों में जिस नर के पंख अधिक चटकीले होते हैं, वह घने पत्तियों के बीच किसी डाल पर भी छिपा हो, तो मादा उसे ढूँढ़कर उसके पास जा बैठेगी। जिस बारहसींगे के सबसे अधिक छहदार सींग हैं, उसके पीछे मृगियाँ आप ही हो लेंगी। मछलियों में जिस नर के अधिक चमकदार पख (Fin) हैं, उसे मादा मछलियाँ अवश्य घेर लेंगी। जिस साँड़ के पुट्ठे भरे हुए हैं, उसी से गाएँ प्रसन्न रहेंगी।

बहुत करके पशु-पक्षियों में नर का सुख मादा के रिझाने

भूषण ने कहा—"इससे तो सिद्ध है कि प्रेम-पाशा फैलाने में, जो सबसे आगे हैं तथा अपने लिये बहू ढूँढ़ने और उसे राजी करने में जो सबसे तेज हैं, वही सबसे अधिक बुद्धिमान् और भाग्यशाली हैं; और जो इस काम में ढीले हैं, वे निरे मूर्ख और अभागे हैं; संसार में उनकी कोई गिनती ही नहीं।"

मैंने कहा—"जल्दी क्यों करते हो ? मैंने अभी एक पक्ष की बात कही है; जरा और सुनो।" भूषण चुप हो गया। मैं कहने लगा—"जीव-विज्ञान के आदि आचार्य डारविन (Darwin) ने कामिक विचय (Sexual selection) नामक अपने सिद्धांत में इसी मत की पुष्टि की है। पर दूसरे विद्वानों ने, जिनके मुखिया वैलेस (Wallace) थे, इसका बड़े जोर से खंडन किया है। वे कहते हैं—'कामिक विचय प्राकृतिक विचय की एक शाखा है।' इसका अर्थ यह हुआ कि संसार में मनुष्य सुंदर, स्वस्थ और चतुर स्त्री का पाणिग्रहण करने में सफल होने के ही कारण अपने गुणों की वृद्धि नहीं करता, वरन् साधारण रूप से अपने गुणों में उन्नति करने के कारण ऐसी कन्या के वरण में सफल होता है।

"इसी बात को दूसरी तरह से समझ सकते हो। तुम जानते हो कि जीव अपनी परिस्थिति पर विजय प्राप्त करके

विकास पाता है, अर्थात् जैसे स्थान पर उसका जन्म होता है, और जैसे देश, काल और समाज में उसका जीवन व्यतीत होता है, उसका स्वभाव वैसा ही रंग पकड़ता है। अब यह समझ लो कि मनुष्य के ऊपर उसके इर्द-गिर्द के जल-वायु, अन्न और संगति का इसलिये प्रभाव पड़ता है कि वह उनसे पलता है। ठीक इसी तरह वह उन स्त्रियों के वशीभूत होकर उन्नति करता है, जो उसके आस-पास होती हैं, और जिनको अपने वश में करने के लिये वह जी-जान से प्रयत्न करता है।

"पुराने वैज्ञानिकों का मत है कि पुरुष स्त्रियों से अधिक तगड़ा, खूबसूरत और जोशीला होता है; क्योंकि परिणय में सफलता के कारण उसके पुरखों के शरीर में यह गुण आ गए थे। वर्तमान समय के वैज्ञानिकों का कथन है कि पुरुषों में रूप और रसिकता उनके पुरुषत्व के—अर्थात् उनके अधिक उत्साही और उद्योगी होने के—कारण देखने में आते हैं।

"नतीजा यह निकला कि प्रेम-व्यवहार और प्रियरंजन में कुशलता मनुष्य के विकास और उन्नति का प्रधान कारण नहीं है। वह गौण है। प्रधान कारण उसका पुरुषार्थ अथवा उद्योग है, जिससे वह क्रमशः थोड़ा-थोड़ा संपन्न होते हुए संपूर्णता प्राप्त करता है।"

भूपण ने रोककर पूछा—"गौण कारण का क्या तात्पर्य है? मनुष्य के विकास के गौण कारण तो अगणित हैं? जैसे और कारण हैं, वैसे ही क्या यह काम-चेष्टा भी है?"

मैंने कहा—"नहीं, संसार में जो कुछ भी हो रहा है, उसके दो ही आधार हैं—कामिनी और कंचन। इन दोनों में बड़ी जबरदस्त शक्ति है। इन्हीं के प्रताप से जगत् बसा हुआ है। जिस दिन इनमें गड़बड़ी अधिक हो जायगी, प्रलय उपस्थित हो जायगा। बस, दुनिया दुनियादारी तक है। जीवन में जो कुछ खींचतान देखते हो, वह या तो पेट के लिये है, या औरत के लिये।

"जब यह बात है, तो तुम समझ सकते हो कि पुरुषों का स्त्रियों के लिये, और स्त्रियों का पुरुषों के लिये कितना प्रबल आकर्षण होगा! तुम्हें स्मरण होगा, अभी मैंने मधुमक्खियों के लिये फूलों के रंग और गंध के आकर्षण की चर्चा की थी। यदि यह आकर्षण न हो, तो भूले से भी कोई मधु-मक्खी वा चींटी फूलों पर न जाय। यही बात स्त्री-पुरुष पर भी घटती है। रूप-लावण्य, कोमल व्यवहार और कमनीयता के कारण ही दोनों प्राणियों का समागम होता है तथा मनुष्य-योनि की परंपरा चलती है।

"मधुमक्खियों और पुरुषों में भेद केवल इतना ही है कि जहाँ मधुमक्खियों को यह नहीं जान पड़ता कि वे क्या कर रही हैं—जहाँ वे आप-ही-आप फूलों की ओर खिंच जाती हैं तथा फूलों के गर्भाधान (Fertilization) का काम करने लगती हैं, वहाँ मनुष्य को—चाहे वह रूप-गुण से कितना ही वशीभूत क्यों न हो जायँ—इतनी सुध-बुध रहती है कि हमें क्या करना चाहिए और हम क्या कर रहे हैं।

"छोटे जीवों में भीतर से एक अंध आवेग आता है, जिसको उन्हें मानना ही पड़ता है। पर मनुष्य तर्क और बुद्धि से काम लेता है, और वह नियत और अनियत कर्म का ध्यान रखता है। मधुमक्खी के लिये एक खिले हुए गुलाब पर न बैठना और उसके पास से उड़ती हुई निकल जाना असंभव है—उस पर बिना चूक प्रकृति का जादू चल जाता है। पर सोच और विचार से काम लेनेवाले मनुष्य के लिये रूप-यौवन की भ्रांति से बच जाना असंभव नहीं है। उसको ख़ूब मालूम रहता है कि उससे बेगार कराने के लिये प्रकृति ने राह में कहाँ-कहाँ जाल और फंदे बिछाए हैं।

"इसीलिये मनुष्य मोह में नहीं पड़ते। टाँव-कुटाँव का विचार त्याग कर वे एकाएक विवाह-बंधन में नहीं पड़ जाते। सदा भार वे अपने ऊपर तभी लेते हैं, जब वे दिल में ठान

लेते हैं कि संतानोत्पत्ति करके पितृ-ऋण से मुक्त होने का अब समय आ गया, और हम इस काम के लिये पूर्ण-रूप समर्थ हो गए। विख्यात दार्शनिक शोपेनहोर ने इसी सूत्र पर विवाह के सिद्धांत की बड़ी गंभीर और ललित व्याख्या की है, जो पढ़ने योग्य है।"

भूषण—"छोटे जीवों और मनुष्यों में कोई और अंतर भी है?"

मैं—"हाँ, छोटे जीवों का व्यवहार स्वाभाविक होता है। प्रकृति को उनसे जितना काम लेना होता है, उतना ही वह कलियों में मनहारी रंग और गंध दे देती है। इसलिये मर्यादा के भीतर ही वे जीव काम करते हैं—उसमें लिप्त होकर वे अपने को सहसा नष्ट नहीं कर बैठते। इसके प्रतिकूल, मनुष्य-योनि में स्त्री-पुरुष की परस्पर सहज और ईश्वर-प्रदत्त अनुरक्ति सीमा के भीतर नहीं रहती—उसमें दोनों ही व्यक्ति, हाव-भाव, शृंगार और बाहरी बनावट के द्वारा, आहुति डालकर बड़ा उपद्रव मचाते हैं।

मनुष्य-समाज के भ्रष्ट होने और उसके दिन-दिन नीचे ही गिरने का यह बहुत बड़ा कारण है कि स्त्री-पुरुषों में स्वयं उद्दीप्त की हुई अतिशय कामासक्ति (Abnormal sex-tendency) काम कर रही है। एक तो करेला,

दूसरे चढ़ा नीम । मनुष्य के शरीर में साधारण रीति से कामाग्नि कम नहीं है । वे एक दूसरे को देखते ही लुभा जाते हैं । उस पर वस्त्र-आभूषण, इत्र-फुलेल, चटक-मटक के मारे बुरी दशा रहती है ।

पुरुष जब जीविका की चिंता किया करते हैं, स्त्रियों को अपने वेश-भूषा का ही ध्यान रहता है । इससे स्त्रियों का तो काम बन जाता है, क्योंकि मजाल क्या कि पुरुष उनसे उदासीन रह जायँ ! पर स्त्रियों के भड़कीले शृंगार के कारण पुरुष इतने कामांध और व्यसनी हो जाते हैं कि जो ३५ साल में मरनेवाले होते हैं, वे तारीख २५ ही साल में अपनी जीवन-लीला समाप्त कर डालते हैं !

पंडित, पाधे और सुधारक बहुत चिल्लाते हैं । कोई कहता है—आजन्म ब्रह्मचारी रहना चाहिए । कोई कहता है—बाल-विवाह रोकना चाहिए । कुछ ऐसे भी हैं, जो बाल-विवाह की प्रशंसा करते हैं, तथा उसकी बुद्धिमानी बतलाते हैं । असली बुराई को कोई नहीं देखता । स्त्री-पुरुष में जितना स्वाभाविक सौंदर्य है, वही बहुत है; उस पर सभ्यता और रसिकता के नाम रंग चढ़ाने की जरूरत नहीं।

शरीर की बनावट और उसके आवश्यकतानुसार जितनी भूख लगती है, मनुष्य उतना ही आहार करके पुष्टि और

स्वास्थ्य लाभ करता है। पर नमक सुलेमानी का दिन-रात सेवन करके यदि वह अपनी क्षुधा पहले से पचगुनी बढ़ा भी ले, तो क्या वह उसके लिये कल्याणकर होगी ?"

भूषण ने कहा—"भाई साहब ! यह सब तो हुआ, पर आज आपने भाँग तो नहीं खाई है, जो आपने विवाह संस्कारादि सबका खंडन कर डाला—भौंरे, तितलियों और मक्खियों के दृष्टांत लेकर प्रेम, रसिकता, भावुकता सबको निरी धोखे की टट्टी बतला गए ?

"यदि आपका कहना सच है, तो मनुष्य अपनी इच्छा के विरुद्ध ही स्त्री का पाणि-ग्रहण करता है। प्रकृति के छल में आकर गृहस्थी में प्रवेश करता है। हम सब लोगों ने दैव-संयोग से संसार में जन्म लिया है। विवाह करना निवार्य है। मनुष्य प्रकृति के प्रपंच का पता पाकर उससे अपना पीछा छुड़ा सकता है। कहिए, मैं आपका आशय ठीक-ठीक समझ रहा हूँ या नहीं।"

मैंने कहा—"सुनो, तुम निरे लड़के हो। इसीलिये ऐसी बातें करते हो। तुम्हारी एक बात का जवाब देता हूँ। बस, तुम्हारे सब संदेह दूर हो जायँगे।

"मनुष्य के लिये विवाह करना अनिवार्य है और नहीं भी है। मनुष्य के शरीर में दो क्रियाएँ होती रहती हैं—एक

वृद्धि की (Anabolic), दूसरी क्षय की (Katabolic)। जब तक मनुष्य के शरीर की पुष्टि होती जाती है, तब तक इन दोनों क्रियाओं का योगफल वृद्धि (Anabolism) की ओर झुकता रहता है। इसके विपरीत, जब शरीर छीजने लगता है, तो उसमें इन दोनों क्रियाओं का योगफल क्षय (Katabolism) की ओर झुकता रहता है। मनुष्य के जीवन में एक ऐसा समय आता है, जब शरीर का पोषण हो चुकता है, और उसकी वृद्धि बिलकुल शिथिल हो जाती है। बस, यह वही समय है, जब कि संतानोत्पत्ति की ओर अग्रसर होना चाहिए।

"प्रकृति के हरएक विभाग में यही सामंजस देखने में आता है। वृक्ष तथा वनस्पति पहले खूब फैलते और हरे-भरे होते हैं; फिर ज्यों ही उनका बढ़ना बंद हुआ कि उनमें फूल आने लगते हैं, और भविष्यत् में उनका अस्तित्व बनाए रखने का प्रबंध शुरू हो जाता है। इसमें दो बातें आती हैं—पहले अस्तित्व और व्यक्तिगत वृद्धि; फिर जब जीवन की अवधि पूरी होने को हुई, तो आगे अपनी जाति का नाम-निशान क़ायम रखने का सामान। ये दोनों काम एक साथ नहीं होते। सिलसिले से एक के बाद दूसरा देखने में आता है। यह भी निर्विवाद है कि अपनी वृद्धि और उन्नति

(Nutritive and vegetative function) तथा संतान की उत्पत्ति और प्रजा की वृद्धि (Multiplying reproductive function) के कार्य एक दूसरे के बिलकुल प्रतिकूल हैं।

"हम यह भी कह सकते हैं कि इन दोनों कामों में वैर (Antithesis) है। वृक्षों में फूल आने का एक समय होता है, पत्तियों के फैलने का दूसरा। जब फूल आने लगते हैं, पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं। बारहमासी वृक्षों में भी उनके लिये अलग-अलग समय होता है। बाग़ के जो वृक्ष केवल हरियाली के लिये लगाए जाते हैं, उनमें अच्छी खाद के साथ-साथ पूरी सिंचाई होती रहती है, और यदि फूल दिखलाई देने लगते हैं, तो उन्हें बीन-बीनकर माली झट तोड़ डालता है। इसके विपरीत, फूलवाले वृक्षों में ऐसी खाद छोड़ते ही नहीं कि उनमें पत्तियाँ फैलें। जो पत्तियाँ आप-ही-आप उगती हैं, उन्हें भी माली तराश डालता है।

"अभिप्राय यह है कि जो रस व्यर्थ डाल और पत्तियों में सूखता है, उससे भी फल ही की फ़सल बढ़ती है। ठीक इसी तरह संतानोत्पत्ति का मार्ग रोक देने से जीव का सारा अंग पुष्ट होने लगता है। पर कब तक? बस तभी तक, जब तक जीव के शरीर का विकास उसकी जाति के शरीर के विकास की चरम सीमा तक नहीं पहुँच जाता।

"बस, इसी हद तक हम कह सकते हैं कि विवाह और गर्भाधान की क्रिया निवार्य है अर्थात् इससे मुख मोड़कर भी मनुष्य स्वास्थ, प्रसन्न और क्रियावान् रह सकता है—उतना ही नहीं जितना वह विवाह और गृहस्थी में पड़ने पर हो सकता था, बल्कि उससे भी बढ़कर। यदि ऐसा न होता, तो संयम करने का कोई महात्म्य ही नहीं था। पर जब किसी व्यक्ति ने औसत रूप से अपने लिये बल, बुद्धि और विद्या उपार्जन कर ली है, तब उसके पश्चात् संयम करने में लाभ के स्थान में कदाचित् हानि ही देखने में आवेगी और वह सब प्रकार के भय और उदासीनता से गिरा रहेगा।

"मैं तुम्हें एक कवि की उक्ति में एक गूढ़ वैज्ञानिक सिद्धांत का परिचय कराता हूँ। किसी ने कहा है—फला-फूला, सो मुर झुलाना। संसार में स्थावर, जंगम जितने भी जीव देखते हो, उन सबकी एक दिन मृत्यु निश्चय है। गोयटे (Goette) महाशय तो कहते हैं कि जिस दिन से वृक्ष-वनस्पति में फूल और फल आने लगते हैं, और दूसरे जीव बच्चे पैदा करने लगते हैं, उसी दिन से उनकी मृत्यु आरंभ हो जाती है। कई पतंगे, तितलियाँ, टिड्डियाँ और दूसरे क्षणभंगुर जीव तो अंडे देने के बाद ही मर जाते हैं। इस से उनमें इतनी हरारत आती है कि न केवल

बल्कि नर भी मर मिटता है। नर में क्षय की वृत्ति (Kotabolic tendency) पहले से ही रहती है; जोड़ खाने के बाद ही उसका दम निकल जाता है। बाज़ केकड़ों और मकड़ों का भी यही हाल होता है।

"तुमने पुराने घरों में प्रायः जाले के ऊपर मरे मकड़ों को टँगा हुआ देखा होगा। मेरे विचार में तो बड़े-बड़े दीवानखाने और बैठकों में भी एक-दो ऐसे मकड़े हों, तो हजारों रुपए के तैल-चित्रों (Oil paintings) से बढ़कर ज्ञान और शिक्षा दें और इस बात को सदा के लिये हमारे चित्त पर अंकित कर दें कि संतानोत्पत्ति कोई खिलवाड़ नहीं! उसमें अपने प्राण तक निछावर करने पड़ते हैं—स्वार्थ-त्याग की वह पराकाष्ठा है। यह जान-बूझकर हम लोगों को इस काम में हाथ लगाना चाहिए।

"पर सोचने की बात है कि जब अपनी मृत्यु निश्चय है, तो इससे भविष्यत् की संतति क्यों न तैयार की जाय, और इस प्रकार से अपना जीवन अमर कर दिया जाय—"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।" इसीलिये बुद्धिमानी इसी में है कि एक नियत समय के बाद एक निश्चित विद्या, सौजन्यता और शारीरिक संगठन लाभ करके मनुष्य गार्हस्थ्य-जीवन में प्रवेश करें।

"पश्चिमी देशों में जहाँ पुनर्जन्म वा आत्मा की अमरता इत्यादि पर लोगों का विश्वास कम है, लोग अपनी संतान के द्वारा ही भविष्यत् में अपना अस्तित्व बनाए रखने पर संतोष करते हैं। स्वाधीन विचारवाले (Free thinkers) इसी आधार पर संसार में काम करने और अपने जीवन से इतिहास में परिवर्तन डालने का विश्वास रखते हैं।"

भूषण ने कहा—"यह ठीक है, पर मैं एक और बात सोच रहा हूँ। वह यह कि यदि हमें विवाह और संतानोत्पत्ति इसलिये करनी चाहिए कि एक अवस्था के बाद चाहे हम विवाह करें या न करें, शरीर से शक्ति निकल ही जाती है, और यदि इस शक्ति का सदुपयोग गृहस्थी में हो सकता है, तो कम-से-कम जब तक वह अवस्था नहीं आती, तब तक तो अपनी शक्ति-सामर्थ्य से दूसरे काम निकाल लें और फिर जब निरुपाय हो जायँ, तो अधेड़ उमर में विवाह कर लें। आप क्या कहते हैं?"

मैं—"हाँ, यह भी सही है। इसमें एक और बात है। मैंने ऊपर बतलाया है कि मनुष्य के शरीर में वय का ज्वार (Tide) आया करता है। यदि युवकों को उचित शिक्षा और दीक्षा हो, तो उस ज्वार से १०-१२ वर्ष तक छुटकारा मिल सकता है। इतने दिनों तक वे

निष्कंटक रहकर व्यक्तिगत कार्य कर सकते हैं। इसके बाद भी ज्वार नियत समय पर ही आया करता है, अर्थात् २४ घंटों में रात के समय और महीने में चर्तुदशी वा पूर्णिमा के दिन क्षय का जोर रहता है। तब देखना चाहिए कि जहाँ तक हो, क्षय कम हो और हो भी, तो ऐसे मार्ग से कि अपने मन एवं आचरण पर कोई बुरा प्रभाव न पड़े, और समाज में अपनी स्थिति खराब न हो।

क्षय के ऐसे मार्ग सबको मालूम हैं—पहला, कठोर व्यायाम वा देश-भ्रमण; दूसरा, सत्संग; तीसरा, किसी महान् उद्देश्य में जी तोड़ परिश्रम; चौथा, संगीत-सेवा; पाँचवाँ, ईश्वर-भजन। पर यह स्मरण रहे कि इन साधनों द्वारा क्षय का रोकना भी साधारण आदमी का काम नहीं। जब बड़े उच्च कोटि का मन और हृदय होता है, तभी यह निभता है; अन्यथा जीवन में गड़बड़ी पड़ने का भय रहता है।

यदि निष्कपट रूप से—संसार ही की दृष्टि में नहीं, बल्कि अपनी दृष्टि में भी—मनुष्य अनिंदित जीवन व्यतीत कर सकता हो, तभी उसे इस रास्ते में आना चाहिए। यह सब *झगड़े सहन करने के लिये उसे उसी समय तैयार होना चाहिए,* जब यह दृढ़ विश्वास हो कि हमारे लिये स्वतंत्र और एकांत-जीवन आवश्यक है, अर्थात् अविवाहित रहकर हम संसार

में ज्यादा काम कर सकेंगे—अपने देश और जाति का अधिक उपकार कर सकेंगे। यदि ऐसा नहीं है, तो व्यक्तिगत जीवन से कोई लाभ नहीं।

हम लोग सारी समाज की अनंत लहर में एक बुलबुला-मात्र हैं। कुछ दिनों के बाद हमें इसी में लीन हो जाना है। यदि इस अगाध मानव-सागर के कर्कश गर्जन में हमारे क्षुद्र जीवन स्वर से कुछ मंजुलता आ सकती है, यदि उसके खारेपन में मधुरता आ सकती है, उसकी क्षुब्धता और कल्लोल में शांति आ सकती है, तो क्यों न हम उसमें उस सरित्-शायी विष्णु-भगवान् के नाम कूद पड़ें और मोक्ष लाभ करें!

किसी प्रकार, चाहे अपने मन से या इसके विरुद्ध, हमें उसी सागर में शरण लेनी है। यदि यह हम लोगों के विचार के अनुकूल न हो, तो अलग ही हम अपने छोटे-से जीवन को श्रेष्ठता और वैभव दें। मनुष्य की संख्या न बढ़ाकर उसके भाव और गुण में योग दें। अपनी जाति के विस्तार और लंबाई-चौड़ाई की परवा न कर उसकी गहराई और तत्त्व की ओर ध्यान दें।

स्पष्ट तो यह है कि बाल-बच्चों की गणना न बढ़ाकर हम अपने देश के बच्चों की शिक्षा और सँभाल का ही भार ले लें। उनके बड़े होने पर उनके विचार और आदर्शों को

मोड़ने का बीड़ा उठा लें। पर यह काम खूब व्यस्त होकर करना चाहिए। चाहे इस ओर या उस ओर; क्योंकि काम-भोग में लिप्त होकर नहीं, वरन् चैतन्य होकर जीवन-यात्रा करना बुद्धिमानी है।"